श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत

रामायण

॥ सुन्दर काण्ड ॥

श्री विनायकी टीका सहित।

जो

वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ गूढ़ार्थ पूरित तथा विविध
कविवर वाणी विभूषित है।

जिसे

पं० विनायक राव (उपनाम कवि 'नायक')
पूर्व असिस्टेण्ट सुपरिंटेंडेंट ट्रेनिङ्ग इंस्टिट्यूशन साम्प्रत पेंशनर
जबलपुर निवासी ने रचकर प्रकाशित किया।

यूनियन प्रेस कं० लि० जबलपुर में मुद्रित हुआ

सन् १८६७ के एक्ट २५ के अनुसार इसकी रजिस्ट्री की गई है, इसे
सिवाय टीकाकार के किसी को छापने का अधिकार नहीं है॥

प्रथमवार २००० प्रति } सम्वत १९७० सन् १९१३ { भेंट ॥)

मोहर ....

◉ श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत ◉

रामायण

॥ सुन्दर काण्ड ॥

श्री विनायकी टीका सहित।

जो

वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ गूढ़ार्थ पूरित तथा विविध कविवर वाणी विभूषित है।

जिसे

पं० विनायक राव (उपनाम कवि 'नायक')
पूर्व असिस्टेण्ट सुपरिंटेंडेंट ट्रेनिङ्ग इंस्टिट्यूशन साम्प्रत पेंशनर
जबलपुर निवासी ने रचकर प्रकाशित किया।

यूनियन प्रेस कं० लि० जबलपुर में मुद्रित हुआ

सन् १८६७ के एक्ट २५ के अनुसार इसकी रजिस्ट्री की गई है, इसे सिवाय टीकाकार के किसी को छापने का अधिकार नहीं है॥

प्रथमवार २००० प्रति } सम्वत् १९७० सन् १९१३ { भेट ॥)

....

मोहर

....



सूचीपत्र ।

श्रीगणेशाय नमः

भूमिका

'धारि हृदय रघुपति चरण, तात मधुर फल खाहु'

रामचरितमानस का यह पाँचवाँ सोपान है इसे सुन्दरकांड कहने के अनेक कारणों में से कई एक लिखे जाते हैं-

१. सुन्दर भूधर पर से हनुमान् जी ने उड़ान भरी थी.

२. इस की कथा का आदि, मध्य और अवसान सब सुन्दर बन ही में हुआ है।

३. इस में हनुमान् जी का बड़ा पराक्रम है, इन की सुयोग्य सुन्दर सेवा के कारण रामचन्द्र जी ने इन का इतना उपकार माना कि उन्हों ने स्वतः यह कहा था —

'सुनु कपि तोहि उऋण मैं नाहीं, देखेउँ करि विचार मन माहीं'

४. परवश में सताये जाने पर भी सीता जी ने अपने पातिव्रत्य धर्म को सुन्दर रीति से निबाहा था. (देखो पुरौनी में सुन्दरी सीता सती)

५. राक्षसयोनि में जन्म पाकर, रावण के अधर्म युक्त राज्य में रहते हुए विभीषण का रामभक्ति में सुन्दरता पूर्वक पूरा २ प्रेम होने के कारण।

६. रावण से शुकदूत का विनय सहित श्री राम शरण गहने का निधड़क सुन्दर कथन

७. ऊपर की सभी बातों में श्री रामचन्द्र जी का धर्म, प्रेम आदि का सुन्दरता पूर्वक निर्वाह

इन सब बातों का विचार कर श्री वाल्मीकि जी ने यह कहा कि 'सुन्दरे सुन्दरी सीता, सुन्दरे सुन्दरी कथा। सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे किन्न सुन्दरं'॥ तभी तो इस कांड का भक्तिपूर्वक पाठ करने से, अथवा इस के मूलमंत्रों में से किसी एक का ही जाप करने से लोग सफल मनोरथ होते हैं (मूलमंत्र पुरौनी में लिखे हैं) और यही कारण है कि संतजन इसे शुभ फलद (अर्थात् उत्तम फलों का देने वाला) कहते हैं और हम भी विश्वास पूर्वक यही कहते हैं कि एवमस्तु।

पुरौनी में क्षेपक, सुन्दरकांड सार आदि के सिवाय मूलमंत्रों का उद्देश व्योरेवार संक्षेप से समझाया है, प्रसिद्ध कहावतें भी लिखी हैं अन्त में सीता सती का अनेक कष्ट सहकर दृढ़ता पूर्वक पातिव्रत्य के निर्वाह का वर्णन है॥

१ विद्वद्वर्य श्रीमान् राय बहादुर पंडित सदाशिव जयराम एम. ए. संस्कृत प्रोफ़ेसर गवर्नमेंट कालेज जबलपुर, फ़ैलो इलाहाबाद यूनीवर्सिटी,

२ श्रीमान पंडित जगन्नाथ जी वैद्यराज गौड़ जबलपुर निवासी

३ श्रीमान पंडित छक्कूलाल वाजपेयी मौज़ा जसपुरापुर ज़िला फ़तेहगढ़ निवासी

इन सब महाशयों को टीका में किसी न किसी प्रकार की सहायता के निमित्त टीकाकार के अनेक धन्यवाद हैं।

लार्डगंज — जबलपुर

मिती आषाढ़ शुक्ल ४ सं १९७०

विनायकराव-पेंशनर

॥ श्री ॥

श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत ।

रामायण

॥ सुन्दरकाण्ड ॥

श्री विनायकी टीका सहित

× ॥

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाण शान्ति प्रदं ।
ब्रह्मा शम्भु फ़णीन्द्रसेव्य मनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम् ॥
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं माया मनुष्यं ‡ हरिम् ।
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपाल चूड़ामणिम् ॥

शब्दार्थ—शान्तं = विकार शून्य । शाश्वतम् = नित्य । अप्रमेयम् = प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से अगम्य । अनघं = दोष रहित । निर्वाणशान्तिप्रदं = मुक्तिरूपी स्थिरता के देनेवाले । ब्रह्माशम्भु = विधाता और महादेव । फणीन्द्र (फणी = सर्प + इन्द्र = राजा) = सर्पों का राजा शेष । सेव्यम् = सेवा करने के योग्य । अनिशं = सदैव । वेदान्तवेद्यं (वेद = ज्ञान + अंत = निर्णय + वेद्यं = जानने के योग्य) = वेदान्त से जानने के योग्य । विभुम् = समर्थ । रामाख्यं (राम + आख्यम्) = राम है नाम जिन का । जगदीश्वरं (जगत + ईश्वर) = संसार के स्वामी । सुरगुरुम् = देवताओं में श्रेष्ठ । मायामनुष्यम् = माया से मनुष्यरूप धारण किये हुए ।

× इस काण्ड की कविता का पिंगल विचार इसी पुस्तक की पुरौनी में देखो।

‡ हरिम् = भक्तों के पापों के हरने वाले, जैसा पांडवगीता में कहा है :—

श्लोक - हरिर्हरति पापानि, दुष्टचित्तैरपि स्मृतः ।
अनिच्छयाऽपि संस्पृष्टो, दहत्येवहि पावकः ॥

अर्थात् चाहे पापी भी स्मरण करे तो भी 'हरि' पापों को हर लेते हैं जैसे अग्नि को चाहें बे मन से भी छुएँ तो वह बिना जलाये नहीं रहती ॥

हरिम् (हृ = हरना) = पापों के हरण कर्त्ता। वन्देऽहं (वंदे + अहम्) = प्रणाम करता हूं मैं । करुणाकरं (करुणा = दया + आकरं = खदान) = दयासागर । रघुवरं = रघुनाथ जी को । भूपाल = राजा । चूड़ामणिम् (चूड़ा = मस्तक + मणिम् = भूषण) = मस्तक के भूषण अर्थात् शिरोमणि, सर्वश्रेष्ठ ॥

अन्वय—शान्तम्, शाश्वतम्, अप्रमेयम्, अनघम्, निर्वाणशान्ति प्रदम्, अनिशम् ब्रह्मा शम्भु फणीन्द्र सेव्यम्, वेदान्तवेद्यं, विभुम्, जगदीश्वरम्, सुरगुरुम्, माया मनुष्यम्, हरिम्, करुणा करम्, भूपाल चूड़ामणिम्, रामाख्यम् रघुवरं अहम् वन्दे ॥

अर्थ—विकार रहित, नित्य, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से अगम्य, निर्दोष, मुक्तिरूपी स्थिरता के देने वाले, सदैव ब्रह्मा, शिव और सर्पराज से सेवित, वेदान्त ही से जानने के योग्य, समर्थ, संसार के स्वामी, देवताओं में श्रेष्ठ, माया से मनुष्यरूपधारी, पापहर्त्ता, दयासागर, राजाओं में शिरोमणि राम नामधारी रघुनाथ जी की मैं वंदना करता हूं ॥

अर्थ—कविताबद्ध संस्कृत श्लोक ही के अनुसार शार्दूल विक्रीड़ितवृत्त में (टीकाकार रचित)—

प्रत्यक्षादि प्रमाण गम्य नहिं जो, निर्वाणदाताप्रभू ।
ब्रह्मा शंकर शेष सेवित सदा, वेदान्त वेद्यौ विभू ॥
श्री रामै जगदीश्वरै सुरगुरू, मायावलंबी हरी ।
वंदौं शान्त दयालु नित्य अनघै, पृथ्वीपती केसरी ॥ १ ॥

श्लोक—नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये ।
सत्यं वदामि च भवानखिलांतरात्मा ॥
भक्तिं‡ प्रयच्छ रघु पुंगव निर्भरां मे ।
कामादिदोष रहितं कुरु मानसं च ॥

शब्दार्थ—न अन्या = नहीं दूसरी । स्पृहा = इच्छा । रघुपते = हे रघुनाथ जी । हृदये = हृदय में । अस्मदीये = हमारे । सत्यं वदामि = सच कहता हूं । च भवान् = और आप । अखिलांतरात्मा = सब के अन्तर्यामी । भक्तिं प्रयच्छ = भक्ति दीजिये ।

‡ भक्तिं प्रयच्छ ....पूर्णभक्तों की सदैव यही इच्छा रहती है कि हम काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओं को अपने वश में कर ईश्वर की अटल भक्ति करते रहें क्योंकि वे भक्ति के आगे मुक्ति को कुछ भी नहीं समझते जैसे कागभुशुण्ड आदि, कहा भी तो है :—

दो०—अब दयाल करके दया, भक्ति दीजिये मोहि ।
ताते रिपुदल जीति के, भजौं रैन दिन तोहि ॥

रघुपुंगव = हे रघुकुल श्रेष्ठ। निर्भरां = अटल। मे = मुझ को। कामादि दोष रहितं = काम आदि दोषों से रहित। कुरु मानसं च = और मन को करो।

अन्वय—(हे) रघुपते अस्मदीये हृदये अन्या स्पृहा न, सत्यं वदामि च भवान् अखिलांतरात्मा (अस्ति)। (हे) रघु पुंगव मे निर्भरां भक्तिं प्रयच्छ, च मानसं कामादि दोष रहितं कुरु ॥

अर्थ—(तुलसीदास जी कहते हैं) हे रघुनाथ जी ! मेरे हृदय में दूसरी इच्छा नहीं है मैं सत्य कहता हूं और आप भी तो सब के अन्तर्यामी हो। हे रघुश्रेष्ठ! मुझे अपनी अटल भक्ति दीजिये और मेरे हृदय को काम, क्रोध, लोभ आदि षड् दोषों से रहित कीजिये ॥

भावार्थ—हे रामचन्द्र जी ! काम आदि छः रिपुओं से बचाकर मुझे अपनी अटल भक्ति दीजिये।

अर्थ—कवितावद्ध संस्कृत श्लोक ही के अनुसार वसंत तिलका वृत्त में (टीकाकार रचित)—

इच्छा नहीं रघुपती मन दूजि मेरे, साँची कहूँ सकल जीव निवास तेरे।
लक्ष्मी निवास अचला मोहि भक्ति दीजै, कामादि दूषणबिना मनमोर कीजै ॥२॥

श्लो०—‡ अतुलित बलधामं स्वर्णशैलाभदेहं ।
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ॥
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं ।
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—अतुलित = अपार। बलधामं = बल के स्थान। स्वर्णशैलाभदेहं = सोने के पर्वत सदृश तेजस्वी शरीर। दनुजवनकृशानुं = राक्षसरूपीवन के हेतु अग्नि तुल्य।

---

‡ अतुलित बलधामं.........राम रसायन रामायण की रसायन भी तो देखिये—
क०—गिरि सो गँभीर प्राण हरत सुवीरन के वैरिन विदीरन को वज्र सों करेरो है।
पव्वै सो परे है खल झुंडन के मुंडन पै परम प्रचंडित उदंड सो घनेरो है ॥
उद्धत अपार जाके बल को न पारावार 'रसिक विहारी' दीन रक्षक निवेरो है।
केशरी कुमार निज वीरता विचार वीर दुष्ट हर जुष्ट रुष्ट पुष्ट मुष्ट तेरो है ॥
और भी—
'धामन्' शब्द नकारान्त है परन्तु कहीं २ यह अकारान्त भी पाया जाता है, जैसे यहां 'धामानम्' के स्थान पर 'धामं' है ॥

ज्ञानिनाम् अग्रगण्यम् = ज्ञानियों में अगुआ । सकलगुण निधानं = संपूर्ण सुलक्षणों से परिपूर्ण । वानराणां अधीशं = बांदरों के स्वामी । रघुपति वरदूतं = रामचन्द्र जी के श्रेष्ठ सेवक । वातजातं = पवनपूत हनुमान् जी को । नमामि = मैं प्रणाम करता हूं ॥

अन्वय—श्लोक ही के अनुसार है ॥

अर्थ—अपार बलवान्, सोने के पर्वत सदृश तेजस्वी शरीर वाले, राक्षसरूपी वन के हेतु अग्नितुल्य, ज्ञानियों में अगुआ, सम्पूर्ण सुलक्षणों से परिपूर्ण वानरों के स्वामी, रामचन्द्र जी के श्रेष्ठदूत, पवनपूत श्री हनुमान् जी को मैं प्रणाम करता हूं ॥

सरलार्थ—अति बलवान् तेजस्वी, राक्षस-नाशक, बड़े ज्ञानी गुणवान् वानराधीश रामदूत पवनपूत को मेरा प्रणाम है ॥

अर्थ – कविताबद्ध संस्कृत श्लोक ही के अनुसार मालिनीवृत्त में (टीकाकार कृत) –

अतिशय बल वीरैं मेरुवर्णैं शरीर, असुरदल सँहारै ज्ञानियों में सुधीरैं ।
सकलगुण निकेतै वानर स्वामि भूतैं, रघुवरवरदूतै मैं नमौंवायुपूतै ॥ ३ ॥

चौ०—जामवंत के वचन सुहाये । सुनि हनुमंत हृदय अति भाये ॥
तब लगि मोहि परिखहहु भाई । सहि दुख कंद मूल फल खाई ॥

सूचना—यहां पर किष्किन्धा कांड की कथा का सम्बन्ध इस कांड से मिलाया गया है । किष्किंधा में हनुमान् जी के प्रश्न का उत्तर जो जामवंत ने दिया था उसी के विषय में हनुमान् जी का विचार यहां पर कहागया है ॥

अर्थ—जामवंत के सुन्दर सिखापन के वचन हनुमान् जी के मन को अच्छे लगे । (ये बोले) हे भाइयो ! तुम सब साथी कंद मूल और फल खाते हुए और आन पड़े दुःखों को सहते हुए मेरी बाट तब तक जोहते रहना ॥

चौ०—जब लगि आवउँ सीतहि देखी । *होइ काज मन हर्ष बिसेखी ॥
अस कहि नाइ सबन्ह कहँ माथा । चलेउ हरषिहिय धरि रघुनाथा ॥

* होइ काज मन हर्ष बिसेखी—स्मरण रहे कि जिस कार्य के आरम्भ करने में प्राणी के चित्त का उत्साह बढ़ता दिखाई देवे वह कार्य अवश्य सिद्ध होता है । यह कथन अंगिरा जी का है सो नीचे की कविता में और ऋषियों के भिन्न २ मत सहित लिखा है :—(श्लोक)

अर्थ––जब तक मैं सीता जी का पता लगाकर लौट आऊँ, 'कार्य सिद्ध होगा' यह मेरे हृदय के आनन्द से प्रकट होता है। इतना कहके (वे) अपने साथियों को प्रणाम कर हृदय में रामचन्द्र जी का ध्यान किये हुए आनन्दपूर्वक चले ॥

चौ०–सिंधु तीर इक सुंदर† भूधर। कौतुक कूदि चढ़ेउ तेहि ऊपर॥
बारबार रघुवीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बलभारी॥

शब्दार्थ––कौतुक = खेल से, सहज ही में। तरकेउ = उड़ान भरी (कूदे) ॥

अर्थ—समुद्र के किनारे एक सुन्दर पर्वत था (हनुमान् जी) उस के ऊपर सहज ही में जा चढ़े। बारम्बार रामचन्द्र जी का स्मरण कर बलवान् हनुमान् जी ने उड़ान भरी ॥

चौ०–जेहि गिरि चरण देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता॥

श्लोक—उषः प्रशस्यते गर्गः, शकुनं च बृहस्पतिः।
अंगिरा मन उत्साहो, विप्र वाक्यं जनार्दनः ॥

अर्थात् (१) गर्गाचार्य जो कहते हैं कि सूर्योदय के पहिले ही प्रस्थान करना शुभ है। (२) बृहस्पति जी का कहना है कि जो चलते समय शुभ शकुन हो तो निधड़क चला जावे, (३) 'अंगिरा जी कहते हैं कि जिस समय मन में उमङ्ग उठे उसी समय चल देवे' और (४) जनार्दन महात्मा का कहना है कि ब्राह्मण कहे तब मार्ग चले ॥

'होइ काज मन हर्ष बिसेखी' इस का पाठान्तर 'होइ काज मोहि हर्ष बिसेखी' भी है जिस का अर्थ कोई २ लोग यों करते हैं कि रामचन्द्र जी का कार्य सिद्ध होवे और मुझे विशेष आनन्द मिले॥

---

† सुन्दर भूधर = सुन्दर पर्वत, किसी २ का कहना है कि सुन्दर नाम के पर्वत पर हनुमान् जी के चढ़ने से इस काण्ड की कथा का आरम्भ हुआ है, इसहेतु इस काण्ड का नाम 'सुंदरकाण्ड' पड़ा। इस के सिवाय इस काण्ड की कथा का आदि मध्य सब सुन्दर ही है क्योंकि खोई हुई सीता जी का पता लगेगा और भी वाल्मीकीय रामायण में लिखा है। यथा :—

सुन्दरे सुंदरी सीता, सुन्दरे सुंदरी कथा।
सुंदरे सुंदरो रामः सुंदरे किन्नु सुंदरं ॥

अर्थात् सुन्दरकांड में सुंदरी सीता जी, सुन्दर में सुंदर कथा और सुन्दरकांड में रामचन्द्र जी भी सुन्दर हैं, कहो तो सुन्दरकांड में कौनसी बात सुन्दर नहीं है? अर्थात् सब ही सुन्दर है। तभी तो बहुधा लोग इस कांड का पाठ किया करते हैं इस अभिप्राय से कि उन की मनोकामना सिद्ध होवे ॥

जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। ते ही* भाँति चला हनुमाना॥
‡ जलनिधि रघुपति दूत विचारी। कह † मैनाक होउ श्रमहारी॥

शब्दार्थ—अमोघ = जो ख़ाली न जावे अर्थात् कार्य को सिद्ध ही करनेवाला॥

अर्थ—जिस पर्वत पर हनुमान् जी ने चरण रक्खे थे वह शीघ्र ही पृथ्वी में धसगया। जिस प्रकार रामचन्द्र जी के अमोघवाण जाते हैं उसी प्रकार हनुमान् जी भी चले। जब समुद्र ने रामचन्द्र जी के दूत को देखा तब तो वह कहने लगा कि हे मैनाक पर्वत! तू हनुमान् को विश्राम दे (अर्थात् जो तू समुद्र में छिपा है सो ऊँचा उठकर हनुमान् जी के ठहरने के लिये आसरा बनजा)॥

सो०—×सिंधु वचन उर आनि, तुरत उठेउ मैनाक तब।
कपि कहँ कीन्ह प्रणाम, पुलकित तनु कर जोरिकरि॥

अर्थ—समुद्र के कथन को हृदय से विचार मैनाक जल्दी से पानी के ऊपर

---

* तेही भाँति चला हनुमाना—कारण (१) पवनपूत ही थे, (२) ब्रह्मचारी और योगी थे। योग सिद्धि से 'लघिमा' सिद्धि प्राप्तकर लोग आकाश में भ्रमण करने की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं देखो पतंजल योग दर्शन या हठ योग व अयोध्या कांड की श्री विनायकी टीका की टि० पृ. ३१७.

‡ जलनिधि रघुपति दूत विचारी—इस पर यह उल्लेख है कि सूर्यवंशी सगर राजा के वैदर्भी नाम स्त्री से ६० हज़ार पुत्र उत्पन्न हुए थे। इन के पिता ने अश्वमेध यज्ञ के लिये घोड़ा छोड़ा था वह चोरी गया और जब उस का पता न लगा तो इन्हों ने बहुत सी पृथ्वी खोद डाली। इसहेतु समुद्र को बहुत विस्तार और गहराई मिली, इस से उस ने सन्तुष्ट हो अपना नाम भी सागर रक्खा क्योंकि सगर राजा के कारण इसे इतना विस्तार मिला। सगर के वंश ही में रामचन्द्र जी का जन्म देखकर सागर ने इन की सहायता मैनाक द्वारा करानी चाही। जैसा कि अध्यात्म रामायण में लिखा है:—

श्लोक—समुद्रोऽप्याह मैनाकं मणि कांचन पर्वतम्।
गच्छत्येष महासत्त्वो हनूमान्मारुतात्मजः॥
रामस्य कार्य सिध्यर्थं तस्यत्वं सचिवो भव।
सगरै र्वर्द्धितो यस्मात् पुराहंसागरो भवम्॥

अर्थात् अब समुद्र, मणि और सुवर्ण की शिखरों वाले मैनाक पर्वत से कहने लगा कि ये महाप्रतापी वायुपूत हनुमान् रामचन्द्र जी के कार्य को सिद्ध करने के हेतु जा रहे हैं इसलिये तुम उन की सहायता करो क्योंकि पहिले सगर के पुत्रों ही से मैं वृद्धि पाकर सागर बन गया हूं॥

† मैनाक—इस की कथा पुरौनी में देखो।

× सिंधु वचन ...... इस सोरठे को कई प्राचीन लोगों ने क्षेपक जानकर छोड़ दिया है।

निकल आया और उस ने रोमांचित शरीर से हाथ जोड़ कर हनुमान् जी को प्रणाम किया ॥

दो०—हनूमान तेहि परसि कर, पुनि कीन्हीं परनाम ।
राम काज कीन्हें बिना, मोहि कहां विश्राम ॥ १ ॥

अर्थ—हनुमान् ने उसे (सम्मान के हेतु) छू लिया और फिर उसे प्रणाम कर के कहा रामचन्द्र जी के कार्य को पूरा किये बिना मुझे विश्राम कहां ? (अर्थात् जब तक मैं रामचन्द्र जी का कार्य पूरा न कर लेगा तब तक विश्राम न करूँगा) ॥

चौ०—जात पवनसुत देवन्ह देखा । जानइ कहँ बल बुद्धि बिसेखा ॥
सुरसा नाम अहिन्ह की माता । पठइह आइ कही तेहि बाता ॥

अर्थ—जब देवताओं ने हनुमान् जी को जाते हुए देखा तब उन्हों ने इन की विशेष शक्ति और बुद्धि की जांच के लिये सुरसा नाम की सर्पों की माता को भेजा उस ने आते ही कहा ॥

चौ०—आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा । सुनत बचन कह पवन कुमारा ॥
राम काज करि फिरि मैं आवउँ । सीता कर सुधि प्रभुहिं सुनावउँ ॥

अर्थ—आज देवताओं ने मुझे भोजन भेजा है (अर्थात् मैं तुम्हें खाती हूं) इस बात के सुनते ही हनुमान् जी कहने लगे । मैं रामचन्द्र जी का काम सिद्ध कर लौटता ही हूं और सीता का पता प्रभु को बता (फिर फिरूँगा) ॥

चौ०—तब तुअ वदन पैठि हौं आई । सत्य कहौं मोहि जान दे माई ॥
कवनिहुँ यतन देइ नहिं जाना । ग्रससि न मोहि कहा हनुमाना ॥

अर्थ—तब तुम्हारे मुँह में आ पैठूँगा, मैं ठीक २ कहता हूं हे माता ! मुझे जाने दे । (परन्तु जब देखा कि ऊपर कहे हुए) किसी भी उपाय से वह जाने नहीं देती तब तो हनुमान् जी कहने लगे तो मुझे खा क्यों नहीं लेती ?

चौ०—योजनभरि तेहि वदन पसारा । कपितनु कीन्ह द्विगुण विस्तारा ॥
सोरह योजन मुख तेइ ठयऊ । तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ ॥

शब्दार्थ—योजन = चारकोस, वदन = (वद = बोलना) = मुँह । (स्मरण रहे कि बदन यह दूसरा शब्द उर्दू का है जिसका अर्थ "शरीर" है । द्विगुण = दूना ।

अर्थ—(यह सुन) सुरसा ने चारकोस तक लम्बा मुँह फैलाया तब हनुमान् जी ने अपने शरीर को उस से दूना बढ़ाया (अर्थात् आठ कोस का करलिया)। फिर उस ने सोलह योजन तक मुँह फैलाया, तुरन्त ही हनुमान् जी बत्तीस योजन के हो गये ॥

चौ०—जस जस सुरसा वदन बढ़ावा। तासु दून कपि रूप दिखावा ॥
शतयोजन तेइ आनन कीन्हा। अतिलघुरूप पवनसुत लीन्हा ॥

अर्थ—जितना जितना सुरसा अपना मुँह बढ़ाती गई उसी उसीका दून हनुमान् जी ने अपना शरीर बढ़ाया। निदान उस ने सौ योजन तक मुँह बढ़ाया, तब हनुमान् जी ने बहुत ही छोटारूप धारण कर लिया ॥

चौ०—वदन पैठि पुनि बाहर आवा। मांगी बिदा ताहि सिर नावा ॥
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मर्म तोर मैं पावा ॥

अर्थ—उस के मुँह में घुस के बाहर निकल और उस से मस्तक नवाकर बिदा माँगी। (वह बोली) जिस कारण देवताओं ने मुझे भेजा था सो मैं तुम्हारी बुद्धि और शक्ति का भेद पा चुकी (अर्थात् मैं जानगई कि तुम बड़े बुद्धिवान् और बलवान् हो)॥

दो०—राम काज सब करिहहू, तुम बल बुद्धि निधान।
आशिष दै सुरसा चली, हर्षि चले हनुमान ॥ २ ॥

अर्थ—तब सुरसा यह आशीर्वाद देकर चली गई कि तुम बड़े ही बलवान् और बुद्धिवान् हो तुम 'रामचन्द्र जी का सब कार्य सिद्ध करोगे' [यह सुन] हनुमान्जी प्रसन्न होते हुए चले ॥

चौ०—*निशिचरि एक सिंधु महँ रहई। करि माया नभ के खग गहई ॥
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल विलोकि तिनकी परछाहीं ॥
गहै छाँह सक सो न उड़ाई। इहि विधि सदा गगनचर खाई ॥

* निशिचरि=सिंहिका राक्षसी, कश्यपऋषि की दिति नाम की पत्नी से सिंहिका का जन्म हुआ। यह हिरण्यकश्यप दैत्य की बहिन और विप्रचित्त दैत्य की स्त्री थी इसी का पुत्र राहु है जो चन्द्रमा को ग्रहण लगाता है। यह राक्षसी इतनी मायाविनी थी कि समुद्र में रहकर उस के ऊपर से उड़ते हुए पक्षियों की छाया को पकड़ उस पक्षी को आकर्षित कर खा जाती थी। यही बर्ताव इस ने हनुमान् से किया था जिन्हों ने उस का कपट पहिचान जल ही में उसे मार डाला था, और आप फिर लंका की ओर चले गये थे ॥

अर्थ—एक राक्षसी समुद्र में रहा करती थी, वह अपनी माया के बल से आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को पकड़ लेती थी (सो इस रीति से कि)। जो जीवधारी आकाश में उड़ते जाते थे उन की छाया पानी में देख। कुछ छाया को धर दबाती थी उस के प्रभाव से वह उड़ नहीं सक्ता था, इस ढँग से वह सदैव पक्षियों को खाया करती थी॥

चौ०—सोइ छल हनूमान ते कीन्हा। तासु कपट कपि तुरतहिं चीन्हा॥
ताहि मारि मारुत सुत वीरा। वारिधि पार गयउ मति धीरा॥

अर्थ—वैसाही कपट उस ने हनुमान् जी से किया, उस छल को महावीर जी जल्दी से जान गये। सो धैर्यवान् पवन पूत हनुमान् उस के प्राण की हानि कर, समुद्र के पार जा पहुंचे॥

चौ०—तहां जाय देखी बन शोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥
नाना तरु फल फूल सुहाये। खग मृग वृंद देखि मन भाये॥

शब्दार्थ—चंचरीक = भौंरा।

अर्थ—वहां पहुंचते ही उन्हों ने एक सुन्दर बन देखा, जहां पर पुष्परस के लोभी भौंरे गुञ्जार रहे थे। वहां भांति २ के वृक्षों में मनोहर फूल और फल लगे थे, तथा पक्षी और पशु भी देखने में मन को सुहावने लगते थे॥

चौ०—शैल विशाल देखि यक आगे। तापर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे॥
उमा न कछु कपि की अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहिं खाई।

अर्थ—थोड़ी दूर एक भारी पर्वत दिखाई दिया, हनुमान् जी निधड़क लपक के उस पर जा चढ़े। (महादेवजी कहते हैं कि) हे पार्वती! इस में कुछ हनुमान् की विशेषता नहीं है ये तो परमेश्वर का प्रताप है, जो काल को भी खा सक्ता है॥

चौ०—गिरि पर चढ़ि †लंका तेइ देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेखी॥

---

† लंका—सुकेश राक्षस के माल्यवान् आदि तीन लड़के बड़े उपद्रवी हुए। इन्हें सुरक्षित रखने को विश्वकर्मा ने त्रिकूट पर्वत पर चार सौ कोस लंबी और १२० कोस चौड़ी लंका नाम की नगरी निर्माण की वहां माल्यवान् आदि बहुत दिन तक रहते रहे। निदान विष्णु जी के डर से ये लोग भाग कर पाताल में जा बसे और लंका ख़ाली पड़ी रही फिर विश्रवा ऋषि की आज्ञा से उस का लड़का कुबेर वहां रहने लगा। समय पाकर रावण बड़ा बलवान् हो उठा और उस ने यह नगरी अपने सौतेले भाई कुबेर से छीन ली तथा आप वहां का राजा बन बैठा। निदान यह भी रामचन्द्र जी के हाथ से मारा गया। लोग कहते हैं कि विभीषण अभी तक लंका का राज्य करता है और इस कल्प के अन्त तक करता रहेगा कारण उस की गणना चिरंजीवियों में है देखो बलि की कथा अयोध्या कांड की श्री विनायकी टीका टि० पृ० ५५ में॥

अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा । *कनक कोट कर परम प्रकासा ॥

शब्दार्थ – दुर्ग (दुह = कठिनाई से + गम् = जाना) = जहांपर कठिनाई से लोग जा सकें। उतंग = ऊँचा । कनक कोट = सोने का परकोटा ॥

अर्थ – पर्वत पर चढ़ कर उन्होंने लंका को देखा जो इतनी अधिक पहुंच से बाहिर थी कि उस का वर्णन नहीं किया जा सक्ता । उस का परकोटा बड़ा ऊंचा था, जो स्वर्ण का होने से बहुत ही प्रकाशवान् था जिस के चारों ओर समुद्र भरा हुआ था ।

छंद—कनक कोट विचित्र मणिकृत सुंदरायत अति घना ।
चौहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथी चारु पुर बहु विधि बना ॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ वरूथनि को गनै ।
बहु रूप निशिचर यूथ अति बल सैन वर्णत नहिं बनै ॥

अर्थ – सोने का परकोटा रंग बिरंग के मणियों से जड़ा हुआ बहुत सुन्दर लंबा चौड़ा बना हुआ था । जिसमें चौकड़िया बाज़ार उत्तम मार्ग और गलियों से सुशोभित उत्तम नगर बसा हुआ था ॥ हाथी, घोड़े, और खचरों के झुण्ड, मनुष्यों के समूह और अगणित रथों को कौन गिन सक्ता था और नाना रूपवाले राक्षसों के समूहों की भारी सेना का वर्णन नहीं किया जा सक्ता ॥

छंद—बन बाग उपवन वाटिका सर कूप वापी सोहहीं ।
नर नाग सुर गंधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं ॥
कहुँ मल्ल देह विशाल शैल समान अतिबल गर्जहीं ।
नाना अखारन्ह भिरहिं बहु विधि एक एकन्हि तर्जहीं ॥

अर्थ – जंगल, फुलबगिया, बगीचा, छोटी बगिया, तालाब, कुए और बावड़ी, शोभायमान् थीं । नरकन्या, नागकन्या, देवकन्या और गंधर्वकन्या सब अपने सौंदर्य से चित्त को लुभाने वाली थीं । कहीं २ पर्वत समान देह धारी पहिलवान् बड़े बल से चिल्ला रहे थे । अनेक अखाड़ों में कई प्रकार लड़ते और एक दूसरे को ललकारते थे ॥

---

* कनक कोट कर परम प्रकासा — राम स्वयम्बर से –

कवित्त—कंचन के कोट पै कँगूरे अति रूरे बने, खावाँ जल पूरे रत्नैं शूरे शस्त्र धारे हैं ।
गुरजैं बनी हैं तोपैं तिनप घनी हैं वीर, रंग में सनी जे फौजैं खड़ी चहुँ द्वारे हैं ॥
गति ना सुरेश औ दिनेश औ धनेश हू की, जामैं सब देश के महेश रखवारे हैं ।
तामैं नहिं शंक धारे अति उतसाह वारे, कीन्हें हैं प्रवेश वेश केसरी दुलारे हैं ॥

छंद—करि यतन भट कोटिन्ह विकट तनु नगर चहुँ दिशि रच्छहीं ।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खग निशाचर भच्छहीं ॥
इहि लागि तुलसीदास इन की कथा संच्छेपहि कही ।
रघुवीर शर तीरथ सरित तनु त्यागि गति पैहैं सही ॥

अर्थ—अगणित बड़े २ विकराल शरीर वाले योद्धा अनेक उपायों से नगर की रच्छा चारों ओर से कर रहे थे । कहीं कहीं राक्षसगण, भैंसे, मनुष्य, गाय, गधा, बकरी और पक्षियों को खा रहे थे ॥ इसहेतु मैं तुलसी दास उन की कथा थोड़े ही में वर्णन करता हूं । (क्योंकि ये भी) रामचन्द्र जी के बाणरूपी नदी तीर्थ में शरीर को छोड़ अवश्य मुक्ति पावेंगे ॥

दोहा—पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह विचार ।
अति लघु रूप धरौं निशी, नगर करौं पैसार ॥३॥

अर्थ—लंकापुरी के बहुत से रखवारे देख हनुमान् जी ने यह विचार किया, कि बहुत छोटा रूप धारण कर रात्रि के समय नगर में पैठूँगा ॥

चौ०—*मशक समान रूप कपि धरी । लंका चले सुमिरि नरहरी ॥

* मशक समान रूप कपि धरी—मशक समान कहने से कवि जी का अभिप्राय यह है कि पहिले लंका को चलते समय हनुमान् जी ने जो पर्वताकार शरीर धारण कर लिया था उसे छोटा कर लिया न कि भुनगा बने क्योंकि आगे चलकर लंकिनी ने जब इन्हें छेड़ा था वहां पर गोसाईं जी ने स्पष्ट लिखा है 'मुष्टिक एक ताहि 'कपि' हनी'। यदि कपि रूप न होता तो 'भुनगे' को न तो लंकिनी पहिचान सक्ती और न 'भुनगा' घूँसा ही मार सक्ता । इस के सिवाय लंकिनी यदि वानर रूप न देखती तो उसे ब्रह्मा का श्राप कैसे स्मरण होता कि 'विकल होसि जब 'कपि' के मारे' इत्यादि । यही बात अध्यात्म रामायण में स्पष्ट लिखी है (सुन्दरकांड सर्ग १ला) यथा—

श्लोक—धृत्वा सूक्ष्मं वपुर्द्वारं प्रविवेश प्रतापवान् ।
तत्र लंकापुरी साक्षाद्राक्षसी वेषधारिणी ॥ ४३ ॥
प्रविशंतं हनूमंतं दृष्ट्वा लंका व्यतर्ज्जयत् ।
कस्त्वं वानर रूपेण मामना दृत्य लंकिनीम् ॥ ४४ ॥

अर्थात् प्रतापवान् हनुमान् छोटा सा रूप धारण कर लंका के द्वार में पैठे । वहां साक्षात् लंकापुरी ही राक्षसी का भेष धारण किये हुए ॥ ४३ ॥ हनुमान् को नगर में पैठते देख झिड़क कर बोली । तू कौन है? जो 'वानर रूप' धारण किये मुझ लंकिनी का अनादर करके जा रहा है ॥ ४४ ॥

नाम ‡लंकिनी एक निशिचरी। सो कह चलेसि मोहि निन्दरी ॥

अर्थ—हनुमान् जी छोटा सा रूप धारणकर मनुष्यों में सिंह के समान रामचंद्र जी का स्मरण करते लंका में जाने लगे। (उन्हें देखते ही) लंकिनी नाम की एक राक्षसी बोल उठी तू मेरा विचार न कर कहां जा रहा है ॥

चौ०—जानसि नाहिं मर्म शठ मोरा। मोर अहार लंक कर चोरा ॥
मुष्टिक एक ताहि कपि हनी। रुधिर बमत धरणी ढनमनी ॥

शब्दार्थ—ढनमनी=ढुलक गई।

अर्थ—रे मूर्ख! तू मेरा भेद नहीं जानता, मेरा भोजन तो लंका के चोर हैं (अर्थात् लंका में चोरी से जाने वालों को मैं खा लेती हूँ)। हनुमान् जी ने उसे एक ऐसा घूँसा जमाया कि वह रक्त उगलते हुए पृथ्वी पर ढुलक गई ॥

चौ०—पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पाणि कर विनय सशंका ॥
जब रावणहिं ब्रह्म वर दीन्हा। चलत विरंचि कहा मोहि चीन्हा ॥

अर्थ—फिर वह लंकिनी सावधान होकर उठ बैठी और हाथ जोड़ डरती २ विनती करने लगी। जिस समय ब्रह्मा ने रावण को वरदान दिया था उस समय चलते २ मुझे यह चिन्ह बताया था कि—

चौ०—विकल होसि जब कपि के मारे। तब जानेसि निशिचर संहारे ॥
तात मोर अति पुण्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता ॥

अर्थ—जब तू बंदर की मार खाकर व्याकुल होवे तब जान लेना कि अब राक्षसों का नाश होगा। हे प्यारे! मेरा बड़ा भारी पुण्य है, कि मैंने अपने नेत्रों से रामचन्द्र जी के दूत के दर्शन किये ॥

दोहा—तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताही सकल मिलि, जो *सुख लव सतसंग ॥४॥

---

‡ लंकिनी किम्वा लंका—लंका नगरी की मूर्त्तिमान् देवता जिस ने लंका की रखवाली माना अपने ही आधीन कर रक्खी थी। जब हनुमान् सीता जी की खोज के समय लंका में छोटा रूप धर कर पैठे थे तब इस ने इन से छेड़छाड़ की और इन के मुष्टि प्रहार से जीवनमुक्त हो गई ॥

* जो सुख लव सतसंग—जैसा कि श्री मद्भागवत् में लिखा है—

श्लोक—तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्संगि संगस्य मर्त्यानांकि मुताशिषः ॥

अर्थात् भगवद्भक्तों के संग के अंशमात्र से भी हम स्वर्ग या मोक्ष की

शब्दार्थ—अपवर्ग (अप = भिन्न + वर्ग = पद) = सब से भिन्न पद अर्थात् मोक्ष ॥

लव = जितने समय में आंख का पलक खुलकर लगे उस का छठवां भाग अर्थात् बहुत ही थोड़ा समय ॥

अर्थ—हे प्यारे स्वर्ग तथा मोक्ष का सुख एकत्र कर यदि तराजू के एक पलड़े में रक्खा जाय तो वह सब उस सुख के बराबर न होगा जो सुख केवल क्षण मात्र ही सज्जनों की संगति से होता है ॥

चौ०—प्रविशि नगर कीजै सब काजा । हृदय राखि कोशलपुर राजा ॥
गरल सुधा रिपु कर मिताई । गो पद सिंधु अनल शितलाई ॥
गरुअ सुमेरु रेणु सम ताही । ‡राम कृपा करि चितवहिं जाही ॥

तुलना नहीं कर सके, यदि उन का आशीर्वाद मिल जावे तो कहना ही क्या ?

और भी :—

सवैया—जो सुख है सत संगति में चतुरानन ने सुख नेक न पायो ।
सो सुख इन्द्र के लोक नहीं अरु सो सुख शंभु के ध्यान न आयो ॥
सो सुख जाप न ताप किये अरु सो सुख योग न ज्ञान बढ़ायो ।
जो सुख है सत संगति में अविनाशी के रूप में जाय समायो ॥

और भी :—

सवैया—तात मिलै पुनि मात मिलै सुत भ्रात मिलै युवती सुखदाई ।
राज मिलै गज बाज मिलै सब साज मिलै मन वांछित पाई ॥
लोक मिलै सुर लोक मिलै विधि लोक मिलै बयकुंठहु जाई ।
सुन्दर और मिले सब ही सुख संत समागम दुर्लभ भाई ॥

‡ राम कृपा करि चितवहिं जाही—रामचन्द्र जी की कृपा से अनेक अनहोनी बातें जो सहज ही में हो जाती हैं उन में से कई तो जो कवि जी ने ऊपर लिखी हैं वे हनुमान् जी के सम्बन्ध से यों घटित होती हैं :—

(१) गरल का अमृत होना अर्थात् संपाती गीध जो सब बानरों को हनुमान् समेत खाना चाहता था सो उन्हें खा जाने के बदले सीता जी का पता बताकर सुग्रीव के हाथ से भी मृत्यु का बचाने वाला हो गया । निदान सीता जी के पास पहुँच कर उन्हों ने यह वरदान पाया कि 'अजर अमर गुणनिधि सुत होऊ'।

(२) रिपु का मित्रता—लंकिनी के उपदेश युक्त आशीर्वाद से प्रकट होती है ॥

(३) समुद्र का गोपद के तुल्य होना तो हनुमान् जी का लीला ही से उछाल मार कर उस के पार जाना था ॥

(४) अग्नि की शीतलता तो लंका दाह के समय सिद्ध हो चुकी जब कि उन के शरीर और पूँछ का एक रोम तक भी न जला ॥

(५) सुमेरु का रेणु तुल्य होना यह है कि पर्वताकार रावण का मान भंग कर उस के देखते देखते अनगिनती राक्षसों का नाश और लंका का दाह कर सुरक्षित लौट आये ॥

नाम †लंकिनी एक निशिचरी। सो कह चलेसि मोहि निन्दरी ॥

अर्थ—हनुमान् जी छोटा सा रूप धारणकर मनुष्यों में सिंह के समान रामचंद्र जी का स्मरण करते लंका में जाने लगे। (उन्हें देखते ही) लंकिनी नाम की एक राक्षसी बोल उठी तू मेरा विचार न कर कहां जा रहा है ॥

चौ०—जानसि नाहिं मर्म शठ मोरा। मोर अहार लंक कर चोरा ॥
मुष्टिक एक ताहि कपि हनी। रुधिर बमत धरणी ढनमनी ॥

शब्दार्थ—ढनमनी = ढुलक गई।

अर्थ—रे मूर्ख! तू मेरा भेद नहीं जानता, मेरा भोजन तो लंका के चोर हैं (अर्थात् लंका में चोरी से जाने वालों को मैं खा लेती हूँ)। हनुमान् जी ने उसे एक ऐसा घूँसा जमाया कि वह रक्त उगलते हुए पृथ्वी पर ढुलक गई ॥

चौ०—पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पाणि कर विनय सशंका ॥
जब रावणहिं ब्रह्म वर दीन्हा। चलत विरंचि कहा मोहि चीन्हा ॥

अर्थ—फिर वह लंकिनी सावधान होकर उठ बैठी और हाथ जोड़ डरती २ विनती करने लगी। जिस समय ब्रह्मा ने रावण को वरदान दिया था उस समय चलते २ मुझे यह चिन्ह बताया था कि—

चौ०—विकल होसि जब कपि के मारे। तब जानेसि निशिचर संहारे ॥
तात मोर अति पुण्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता ॥

अर्थ—जब तू बंदर की मार खाकर व्याकुल होवे तब जान लेना कि अब राक्षसों का नाश होगा। हे प्यारे! मेरा बड़ा भारी पुण्य है, कि मैंने अपने नेत्रों से रामचन्द्र जी के दूत के दर्शन किये ॥

दोहा—तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताही सकल मिलि, जो *सुख लव सतसंग ॥३॥

---

† लंकिनी किम्वा लंका—लंका नगरी की मूर्त्तिमान् देवता जिस ने लंका की रखवाली माना अपने ही आधीन कर रक्खी थी। जब हनुमान् सीता जी की खोज के समय लंका में छोटा रूप धर कर पैठे थे तब इस ने इन से छेड़छाड़ की और इन के मुष्टि प्रहार से जीवनमुक्त हो गई ॥

* जो सुख लव सतसंग—जैसा कि श्री मद्भागवत् में लिखा है—

श्लोक—तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्संगि संगस्य मर्त्यानांकि मुताशिषः ॥

अर्थात् भगवद्भक्तों के संग के अंशमात्र से भी हम स्वर्ग या मोक्ष की

शब्दार्थ—अपवर्ग (अप = भिन्न + वर्ग = पद) = सब से भिन्न पद अर्थात् मोक्ष ॥

लव = जितने समय में आंख का पलक खुलकर लगे उस का छठवां भाग अर्थात् बहुत ही थोड़ा समय ॥

अर्थ—हे प्यारे स्वर्ग तथा मोक्ष का सुख एकत्र कर यदि तराजू के एक पलड़े में रक्खा जाय तो वह सब उस सुख के बराबर न होगा जो सुख केवल क्षण मात्र ही सज्जनों की संगति से होता है ॥

चौ०—प्रविशि नगर कीजै सब काजा । हृदय राखि कोशलपुर राजा ॥
गरल सुधा रिपु कर मिताई । गो पद सिंधु अनल शितलाई ॥
गरुअ सुमेरु रेणु सम ताही । ‡राम कृपा करि चितवहिं जाही ॥

तुलना नहीं कर सक्ते, यदि उन का आशीर्वाद मिल जावे तो कहना ही क्या ?

और भी :—

सवैया—जो सुख है सत संगति में चतुरानन ने सुख नेक न पायो ।
सो सुख इन्द्र के लोक नहीं अरु सो सुख शंभु के ध्यान न आयो ॥
सो सुख जाप न ताप किये अरु सो सुख योग न ज्ञान बढ़ायो ।
जो सुख है सत संगति में अविनाशी के रूप में जाय समायो ॥

और भी :—

सवैया—तात मिलै पुनि मात मिलै सुत भ्रात मिलै युवती सुखदाई ।
राज मिलै गज बाज मिलै सब साज मिलै मन वांछित पाई ॥
लोक मिलै सुर लोक मिलै विधि लोक मिलै बयकुंठहु जाई ।
सुन्दर और मिले सब ही सुख संत समागम दुर्लभ भाई ॥

‡ राम कृपा करि चितवहिं जाही—रामचन्द्र जी की कृपा से अनेक अनहोनी बातें जो सहज ही में हो जाती हैं उन में से कई तो जो कवि जी ने ऊपर लिखी हैं वे हनुमान् जी के सम्बन्ध से यों घटित होती हैं :—

(१) गरल का अमृत होना अर्थात् संपाती गीध जो सब बानरों को हनुमान् समेत खाना चाहता था सो उन्हें खा जाने के बदले सीता जी का पता बताकर सुग्रीव के हाथ से भी मृत्यु का बचाने वाला हो गया । निदान सीता जी के पास पहुँच कर उन्हों ने यह वरदान पाया कि 'अजर अमर गुणनिधि सुत होऊ' ।

(२) रिपु का मित्रता—लंकिनी के उपदेश युक्त आशीर्वाद से प्रकट होती है ॥

(३) समुद्र का गोपद के तुल्य होना तो हनुमान् जी का लीला ही से उछालमार कर उस के पार जाना था ॥

(४) अग्नि की शीतलता तो लंका दाह के समय सिद्ध हो चुकी जब कि उन के शरीर और पूँछ का एक रोम तक भी न जला ॥

(५) सुमेरु का रेणु तुल्य होना यह है कि पर्वताकार रावण का मान भंग कर उस के देखते देखते अनगिनती राक्षसों का नाश और लंका का दाह कर सुरक्षित लौट आये ॥

अर्थ—हृदय में कौशलाधीश श्री रामचन्द्र जी का ध्यान कर लंका में पैठ सब कार्य सिद्ध करो । (देखो) जिस के ऊपर रामचन्द्र जी दया दृष्टि से देखते हैं उस को विष तो अमृत के तुल्य हो जाता है, शत्रु मित्र बन जाता है, समुद्र गाय के खुर के समान और अग्नि शीतल हो जाती है, तथा भारी सुमेरु पर्वत कण के समान हो जाता है ॥

चौ०—अति लघुरूप धरेउ हनुमाना । पैठा नगर सुमिरि भगवाना ॥
‡मंदिर मंदिर प्रति कर शोधा । देखे जहँ तहँ अगणित योधा ॥

अर्थ—हनुमान् जी ने और भी छोटा रूप धारण किया और वे रामचन्द्र जी का स्मरण कर लंका में धस पड़े । उन्हों ने प्रत्येक घर में खोज लगाया, जहां तहां बहुतेरे योद्धाओं को देखा ॥

चौ०—गयउ दशानन मंदिर माहीं ।†अति विचित्र कहि जात सो नाहीं ॥
शयन किये देखा कपि तेही । *मंदिर महँ न दीख वैदेही ॥

अर्थ—फिर हनुमान्जी रावण के महलोंमें गये जे ऐसे सुंदर बने थे कि उन का वर्णन नहीं किया जा सक्ता । उन्हों ने उसे सोते हुए देखा परंतु महलों में जानकी को न पाया ॥

चौ०—भवन एक पुनि दीख सुहावा । हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा ॥

---

‡ मंदिर मंदिर प्रतिकर शोधा—कविवर मनियारसिंह कृत सुंदर कांड से—

कवित्त—पैठ्यो भौन मध्य महामत्त निसचरन के लीला लघुरूप नेक शंका न शरीर की ।
कोठरी दलाने दरीखाने तहखानन में महल अनंत हेरे महाभट भीर की ॥
'यार' कहै या प्रकार नगर निहारि वीर स्वामी काज कारन परम तन पीर की ।
हेर्यो कोटि बानी यातुधानीन के पुंज पै न कहूँ ठहरानी महारानी रघुवीर की ॥

† अति विचित्र कहि जात सो नाहीं—राम स्वयम्बर से—(कवित्त)

सोहै खासो आम खास फैलि रह्यो है प्रकाश , दीपन मणिन दश वदन विलास को ।
फैली है सुवास आस पास त्यों अकाश हू लौं, देवक हुलास देखिबे को राखैं आस को ॥
ऋद्धि सिद्धि वास कीन्हें मानि के सुपास अति, कालपाशहू की त्रास पावति विनास को ।
आसमान बासव निवास हू को हास करै, देख्यो रामदास ऐसे रावण अवास को ॥

* मंदिर महँ न दीख वैदेही—इस के आगे ६ लकीरों का क्षेपक है सो पुरानी में मिलेगा ॥

अर्थ—उन्हों ने वहां पर एक मनोहर महल देखा, जिस से अलग एक भगवान् का मंदिर बना था ॥

दो०—‡रामायुध अंकित सुगृह, शोभा बरनि न जाइ ।
नव तुलसी के वृन्द बहु, देखि हर्ष कपिराइ ॥ ५ ॥

अर्थ—वह महल धनुषबाण के चिन्हों से भूषित था जिस की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सक्ता। वहां पर बहुत से तुलसी के नयेनये समूहों को देख हनुमान् जी प्रसन्न होगये ॥

चौ०—लंका निशिचर निकर निवासा । इहां कहां सज्जन कर वासा ॥
मन महँ तर्क करन कपि लागे । ताही समय †विभीषण जागे ॥

अर्थ—लंका में तो राक्षसों की बस्ती है यहां पर सज्जन कहां से आ बसे । इस प्रकार हनुमान् जी मन में अटकल बांध रहे थे कि उसी समय विभीषण की नींद खुली ॥

चौ०—राम नाम तेहि सुमिरन कीन्हा । हृदय हर्ष कपि सज्जन चीन्हा ॥
इहिसन हठ करि हौं पहिचानी । *साधु ते होइ न कारज हानी ॥

अर्थ—वे रामनाम जपने लगे, तब तो हनुमान्जी आनंदित हुए कारण उन्हों ने जान लिया कि कोई सत्पुरुष है । (उन्हों ने सोचा कि) इन से अवश्य भेट करूँगा क्योंकि सत्पुरुष से कार्य में विघ्न नहीं पड़ते ॥

चौ०—विप्र रूप धरि वचन सुनावा । सुनत विभीषण उठि तहँ आवा ॥

---

‡ 'रामायुध अंकित सुगृह' का पाठान्तर 'रामनाम अंकित गृह' भी है। स्मरण रहे कि श्री रामचन्द्र जी के आयुध से जिस का घर चिन्हित रहता है उस के पास यमदूत नहीं आते उसे तो नारायण के दूत बैकुण्ठ में ले जाते हैं ॥

† विभीषण—विश्रवा से कैकसी नाम की स्त्री द्वारा ये तीन पुत्र हुए थे रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण । विभीषण रामभक्त था । इन का जीवन चरित्र बालकांड की श्री विनायकी टीका में देखो ।

* साधु ते होइ न कारज हानी—चाणक्य नीति में लिखा है—

श्लोक—साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थ भूताहि साधवः ।
कालेन फलते तीर्थं, सद्यः साधु समागमः ॥

अर्थात् साधुओं का दर्शन ही पुण्य है इस कारण कि साधु तीर्थरूप है । समय पाकर तीर्थ फल देता है साधुओं का संग तो तुरन्त ही फल देता है ॥

‡करि प्रणाम पूछी कुशलाई । विप्र कहहु निज कथा बुझाई ॥

अर्थ—उन्हों ने ब्राह्मण का रूप धारण कर कदाचित् यह वचन कहा कि 'जय सीता राम' सुनते ही विभीषण उठकर उन के पास आ गये । और प्रणाम कर कुशल प्रश्न पूछे फिर कहा कि हे विप्र! तुम अपनी कथा समझा कर कहो ॥

चौ०—की तुम हरिदासन महँ कोई । मेरे हृदय प्रीति अति होई ।
की तुम राम दीन अनुरागी । आयहु मोहि करन बड़भागी ॥

अर्थ—क्या तुम हरि अर्थात् ईश्वर के सेवकों में से कोई हो ? (क्योंकि) मेरे मन में तुम पर बड़ा प्रेम उठता है । अथवा तुम रामभक्त हो और उन के प्रेमी हो जो मुझे भाग्यवान् बनाने आये हो ॥

दो०—हनूमान तब सब कही, राम कथा निज नाम ।
सुनत युगल तनु पुलकि अति, मगन सुमिरि गुणग्राम ॥ ६ ॥

अर्थ—तब हनुमान् जी ने सब कथा और अपना नाम कह सुनाया । सुनते ही दोनों प्राणियों के रोम खड़े हो आये और वे रामचन्द्र जी के गुणानुवाद स्मरण कर आनंद में मग्न हो गये ॥

चौ०—सुनहुँ पवनसुत रहनि हमारी । जिमि दशनन्ह महँ जीभ बिचारी ॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा । करहहिं कृपा भानुकुलनाथा ॥

अर्थ—विभीषण बोले हे हनुमान् जी यहां पर हम इस प्रकार से रहते हैं जिस प्रकार दांतों के बीच में बिचारी जीभ (अपनी जीभ को दांत घेरे रहते हैं यदि वह कुछ आगे बढ़े तो दांतों में दबकर कटजाय इसी प्रकार मैं अपने ही महल में दबी हुई रीति से भजन किया करता हूं यदि और लोगों पर उस का प्रभाव डालूँ तो वे मुझे कष्ट पहुँचावें)। हे प्यारे! रघुवंशियों में श्रेष्ठ रामचन्द्र जी असहाई समझ क्या मुझ पर कभी कृपा करैंगे ?

---

‡ करि प्रणाम पूछी कुशलाई—मनुस्मृति के दूसरे अध्याय के १२७वें श्लोक में चारों वर्ण के मनुष्यों से भेट होने पर किस प्रकार बर्ताव करना उचित है सो लिखा है यथा:—

श्लोक—ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्, क्षत्र बंधु मनामयम् ।
वैश्यं क्षेमं समागम्य, शूद्रमारोग्य मेव च ॥

अर्थात् परस्पर भेट होने पर प्रणाम के पश्चात् छोटे वा समान अवस्था वाले ब्राह्मण का कुशल, क्षत्रिय का मंगल, वैश्य का क्षेम और शूद्र की आरोग्यता का समाचार पूछना चाहिये ॥

चौ०—†तामस तनु कछु साधन नाहीं । प्रीति न पदसरोज मनमाहीं ॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता । बिन हरि कृपा मिलहिं नहिं संता ॥

अर्थ—एक तो मेरा राक्षसी शरीर है, दूसरे भक्ति के कोई उपाय भी नहीं हैं और न रामचंद्र जी के कमलस्वरूपी चरणों में मेरा प्रेम है । हे हनुमान् जी ! अब मुझे विश्वास हो गया, कारण रामचंद्र जी की कृपा बिना सज्जनों का समागम नहीं होता ॥

चौ०—जो रघुवीर अनुग्रह कीन्हा । तौ तुम मोहि दरश हठि दीन्हा ॥
सुनहुँ विभीषण प्रभु कै रीती । करत सदा सेवक पर प्रीती ॥

अर्थ—जब रामचंद्र जी ने कृपा की तब ही तौ तुम ने मुझे जान बूझ कर दर्शन दिये । (हनुमान् जी बोले) हे विभीषण ! सुनो, रामचंद्र जी का यह प्रण है कि वे अपने सेवक पर सदा प्रेम करते हैं ॥

चौ०—कहहु कवन मैं परमकुलीना । कपि चंचल सबहीविधि हीना ॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा । ता दिन ताहि न मिलै अहारा ॥

अर्थ—देखो मैं कुछ बड़े कुल का थोड़ा ही हूं. मैं चपल बन्दर सब प्रकार से कम हूं । (यहां तक कि) यदि कोई सबेरे मेरा नाम लेवै तो उस दिन उसे भोजनों का संदेह रहै ॥

सूचना—जो विभीषण ने कहा था मेरा तामस शरीर है उसी के सदृश हनुमान् जी कहते हैं कि मेरा भी कपि शरीर है जो उन्हों ने अपने को साधन-हीन बतलाया था सो हनुमान् जी भी अपने को सब विधि हीन कहते हैं और जो कहा था 'पदसरोज प्रीति नहीं' उस के उत्तर में अपने को चंचल बतलाते हैं ॥

दो०—सखा सुनहु अस मैं अधम, मोहूँ पर रघुवीर ।
कीन्ही दाया सुमिरि गुण, भरे विलोचन नीर ॥ ७ ॥

† तामस तनु – लिखा है मनु जी ने १२वें अध्याय के ४४वें श्लोक में –

श्लोक–चारणाश्च सुपर्णाश्च, पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः ।
रक्षांसि च पिशाचाश्च, तामसीषूत्तमा गतिः ॥

अर्थात् नट आदि, पक्षी, पाखण्डी मनुष्य, राक्षस और पिशाच इन योनियों की प्राप्ति तमोगुण की उत्तम श्रेणी के अंतर्गत है ॥

अर्थ—हे मित्र ! मैं इस प्रकार का नीच हूं तौभी रामचन्द्र जी ने मुझ पर दया की है, इस प्रकार रामचन्द्र जी के गुणों का स्मरण कर हनुमान् जी के नेत्रों में आंसू भर आये ॥

चौ०–जानत हू अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥
इहि विधि कहत रामगुण ग्रामा। पावा अनिर्वाच्य विश्रामा ॥

शब्दार्थ—अनिर्वाच्य = (अ + निः + वाच्य) = जो कहने में न आवै अकथनीय ॥

अर्थ—जो लोग जान बूझकर ऐसे प्रभु को छोड़ भटकते फिरते हैं वे दुःखी क्यों न होवैंगे (अर्थात् अवश्य होवैंगे)। इस प्रकार रामचन्द्र जी के गुणानुवाद कहते हुए, उन्हों ने ऐसी शांति पाई कि जिसका कथन नहीं हो सक्ता ॥

चौ०–पुनिसबकथा विभीषणकही। जेहिविधि जनकसुता तहँ रही ॥
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखा चहौं जानकी माता ॥

अर्थ—फिर विभीषण ने वह सब वार्त्ता कह सुनाई जिस प्रकार से जानकी जी वहां रक्खीं गईं थीं। तब हनुमान् जी कहने लगे हे भाई! सुनो, मैं तो मातु जानकी जी को देखना चाहता हूं ॥

चौ०–युक्तिविभीषणसकलसुनाई । चलेउ पवनसुत बिदा कराई ॥
धरि सोइ रूप गयउ पुनि तहँवा। बन ‡अशोक सीता रह जहँवा॥

अर्थ – फिर विभीषण ने सब उपाय कह सुनाये, तब हनुमान् जी उन से

‡ बनअशोक—फल फूल वाले वृक्षों से सज्जित, स्त्रियों के साथ बिहार करने के निमित्त बनाई हुई मनोहर बगिया; जिस में रावण ने सीता को हरण करने के पश्चात् रख छोड़ा था। उस का वर्णन ये है—

सवैया—श्री रघुवीर को सीस नवाय गयो कपिराय जहां सुधि पाई।
चंपक मौलसिरी वट ताल लवंग लता कचनार सुहाई॥
कंज कदंब जुही कदली सुर दाड़िम बोल इला अवराई।
केतकि हारसिंगार गुलाब सरोवर कूप महा सुखदाई॥ १॥
मोर चकोर कपोत कहूँ सुभलारस चातक हंस लुभाने।
खंजन चक्र भिली बक बानर नीरकपिंजल और बखाने॥
भृंग कुरंग सदा धुनि सो सब खेवत ता वन को लपटाने।
ए सुख जानकी राम बिना 'कविराम' न सोवत जागत जाने॥ २॥

विदा मांगकर चले। उन्हों ने अपना वही छोटा सा रूप धारण कर लिया और अशोक बन में जा पहुंचे जहां पर सीता जी रहतीं थीं ॥

चौ०-देखि मनहिमन कीन्ह प्रणामा। बैठे बीति गई निशियामा ॥
कृश†तनु सीस जटा इकवेणी। जपतिहृदयरघुपतिगुणश्रेणी ॥

अर्थ—उन को देखकर अपने मन ही में प्रणाम कर लिया और वहीं बैठे २ एक पहर रात्रि (जो बाक़ी थी) बिता दी। सीता जी की दुर्बल देह हो रही थी, शिर में बाल जटा की नाईं होकर इकट्ठे चिमटकर एक वेणी बन गये थे। वे हृदय में रामचन्द्र जी के गुणानुवाद रटतीं रहतीं थीं ॥

दो०—निजपद नयन दिये मन, रामचरण महँ लीन।
परमदुखी भा पवनसुत, निरखि जानकी दीन ॥ ८ ॥

अर्थ—जो नेत्रों से अपने ही चरणों को देखती हुईं मन से श्री रामचन्द्र जी के चरणों का ध्यान कर रहीं थीं ऐसी जानकी जी को दीन दशा में देख, हनुमान् जी को बड़ा दुःख हुआ ॥

चौ०-तरुपल्लव महँ रहा लुकाई। करै विचार करौं का भाई ॥
तेहिअवसर रावण तहँआवा। संग नारि बहु किये बनावा ॥

अर्थ—वृक्ष के पत्तों की आड़ में छिप रहे और मन से विचार करने लगे कि अरे भाई! अब क्या करना चाहिये? उसी समय रावण बन ठन कर अपने साथ बहुत स्त्रियों को लेकर वहां आ पहुंचा ॥

चौ०-बहुविधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद दिखावा ॥

अर्थ—उस दुष्ट ने सीता जी को अनेक प्रकार से समझाया, अर्थात् (१) साम (साधारण सिखापन), (२) दान (बहुमूल्य वस्त्राभूषणादि), (३) भय (दंड) और (४) भेद (दूसरों पर प्रेम आदि) सूचित किया।

---

† कृशतनु सीस जटा इक वेणी-कवि हृदय राम के हनुमन्नाटक में रामचंद्र जी के द्वारा बताये हुए चिन्ह प्रायः यही सब थे कि जिन से हनुमान् जी ने सीता जी को पहचान लिया जैसे—

कवित्त—जाके बँधे केश तन तापसी को भेष सुन बानर नरेश दृग नीर उर धोवती।
भूषण मलीन पियहीन सुख छीन जाकी ह्वै है दशा दीन निशि नींदहूनसोवती ॥
अंगन रुखाई फूलसेज ना डसाई जाकी ताको जानलीजो नार नीचेमुख जोवती।
हनू सुन मीत सिय पाइबे की रीति लंक जाकी भीत भीत रामराम कहिरोवती ॥

चौ०–कह रावण सुनु सुमुखि सयानी। *मंदोदरी आदि सब रानी॥
तव अनुचरी करौं प्रण मोरा। एकबार विलोक मम ओरा॥

अर्थ–रावण कहने लगा कि हे चतुर सुन्दर वदनी! मैं ने यह निश्चय कर लिया है कि मंदोदरी आदि अपनी सब रानियों को तुम्हारी दासी बना दूंगा, तुम, मुझे एकबार भी आंख उठाकर देखो तो सही॥

चौ०–†तृणधरि ओट कहति वैदेही। सुमिरि अवधपति परमसनेही॥
सुनुदशमुख खद्योत प्रकाशा। कबहुँ कि नलिनी करहिं विकाशा॥

अर्थ–सीता जी अपने परमप्यारे अयोध्यानाथ श्री रामचन्द्र जी का ध्यान कर तथा तिनका की आड़ करके बोलीं। रे दश सीस सुन, क्या जुगनू के प्रकाश से कमल प्रफुल्लित हो सक्ते हैं? (कभी नहीं)। (भाव यह है कि जिस प्रकार जुगनू की चमक से कमल का फूलना असम्भव है उसी प्रकार तेरे तुच्छ वैभव से मेरी प्रसन्नता असम्भव है)॥

---

* मंदोदरी आदि सब रानी— हृदय राम कवि कृत हनुमन्नाटक से —

क०–सूर हूं न हेरी ऐसी रानी सब मेरी सुन ते तो तेरी चेरी सब आज ही करत हौं।
देवन की बेटी पट रूप ह्व लपेटी रति लेटी जिन्हैं देखि माथे तिन के धरत हौं॥
जानकी सयानी तैं तो महिमा न जानी कछु आपनी बिरानी ताते अधिकै जरत हौं।
ईस सीस चढ़े पुनि लै असीस बढ़े देख तेई दस सीसन सो पाइन परत हौं॥

† तृण धरि ओट कहति वैदेही—तिनका की ओट कर के जो सीता जी ने रावण से बात चीत करने का आरम्भ किया उसका मुख्य कारण यह है कि पतिव्रता स्त्री को परपुरुष की ओर देखना तक न चाहिये जैसा कि बृहन्नारदीय पुराण में लिखा है कि–

श्लो०—नावलोक्या दिशस्वैरम्, नावलोक्यः परोजनः।
विलासैरवलोक्यं स्यात्, पत्युराननपंकजं॥

अर्थात् (पतिव्रता स्त्री को) इच्छानुसार दिशा विदिशा अवलोकन न करना चाहिये तथा परपुरुष को देखना न चाहिये, यदि देखै तो प्रेम सहित अपने पति के मुख कमल को देखै।

परन्तु यहां पर रावण को उत्तर देने की आवश्यकता पड़ी तो उन्हों ने तिनका की ओट कर अपनी दृष्टि का लक्ष्य तिनके को बना लिया रावण की ओर न देखा। इस के सिवाय यह भी दरशाया कि मैं तुम्हें तिनके के तुल्य भी नहीं समझती क्योंकि मेरा लक्ष्य तिनके पर है तुम पर नहीं॥ सच पूछो तो सीता जी सदैव अपनी दृष्टि अपने ही चरणों की ओर किये रहती थीं जैसा कि हनुमान् जी के कथन से स्पष्ट होता है॥

दो०—नाम पाहरू दिवस निशि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद यंत्रिका, प्राण जाहिं केहि बाट॥

चौ०—अस मन समुझति कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुवीर वाण की॥
शठ सूने हरि आनसि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

अर्थ—इस प्रकार मन में गुनकर सीता जी फिर कहने लगीं। रे दुष्ट! तुझे रघुनाथ जी के वाण का स्मरण नहीं है? (भाव यह है कि उन्होंने ऐसे ही तिनका के वाण से जयन्त की दुर्दशा कर डाली थी)। रे अज्ञानी! तू मुझे अकेली पाकर उठा लाया है, रे नीच, लज्जाहीन! क्या तुझे लाज छूकर भी नहीं निकली? दूसरी लकीर का दूसरा अर्थ अन्वय सहित :—

अन्वय—(रे) शठ हरि सूने मोहि आनसि,

अर्थ—रे धूर्त! हरि अर्थात् रामचन्द्र जी के वहां उपस्थित न रहने से तू मुझे ले आया है इत्यादि।

दो०—आपुहि सुनि खद्योत सम, रामहि भानु समान।
परुषवचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसियान॥ ९॥

शब्दार्थ—असि = तलवार।

अर्थ—अपने को जुगनू के समान और रामचन्द्र जी को सूर्य के समान सुन तथा और भी अनेक कटु वचन सुनकर वह तलवार को निकाल बड़े क्रोध में आकर कहने लगा॥

चौ०—सीता तैं मम कृत अपमाना।*काटौं तवशिर कठिनकृपाना॥
नाहिं त सपदि मानु ममवानी। सुमुखि होत नतु जीवन हानी॥

---

* काटौं तवशिर कठिन कृपाना—धन्य है! सती सीता जी का साहस तो देखिये—

ऐ रावण तु धमकी दिखाता किसे, मुझे मरने का ख़ौफ़ ख़तर ही नहीं।
मुझे मारेगा क्या अपनी ख़ैर मना, तुझे होनी की अपनी ख़बर ही नहीं॥
तू जो सोने की लंका का मान करे, मेरे आगे वह मिट्टी का घर ही नहीं।
मेरे दिल का सुमेरु हिलेगा कहां, मेरे मन में किसी का है डर ही नहीं॥
आवें इन्दर नरेन्दर जो मिलके सभी, क्या मजाल जो शील को मेरे हरें।
तेरी हस्ती है क्या सिवा राम पिया, मेरी नज़रों में कोई बशर ही नहीं॥
तू सहस्सर अठासी जो रानी वरीं, तुझे इतने पर आया सबर ही नहीं।
तू पराई तिया पै जो ध्यान दिया, ऐ अधर्मी नरक का ख़तर ही नहीं॥
मेरी चाह जो दिल में थी तेरे बसी, तो स्वयम्बर में क्यों जीत लाया नहीं।
बता दे रहा है तु कौने शहर, जां स्वयम्बर की पहुँची ख़बर ही नहीं॥
जो हुआ सो हुआ अब भी ख़ैर मना, मुझे राम पर जल्दी से दे तू पठा।
कह सीता वगरनः होवेगा क्या, चँद रोज़ह में तेरा यह सिर ही नहीं॥

शब्दार्थ — मम = मेरा । कृत = किया । कृपाना = तलवार । सपदि = शीघ्र, जल्दी ॥

अर्थ—हे सीता ! तू ने मेरा अनादर किया है इसहेतु मैं तेरे मस्तक को तीक्ष्ण तलवार से काटे डालता हूं । नहीं तौ हे सुन्दरी ! जल्दी से मेरा कहना मान ले, जो न मानेगी तौ तेरे प्राण की हानि होगी ॥

चौ० — श्यामसरोजदामसमसुंदर । प्रभु भुज करिकर सम दशकंधर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनुशठ अस प्रमाण प्रणमोरा॥

शब्दार्थ — दाम = माला । करिकर = हाथी की सूँड़ ।

अर्थ—(सीता जी बोलीं) रे मूर्ख रावण ! सुन, मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि या तो नीले कमल की माला के समान सुन्दर तथा हाथी की सूँड़ के सदृश रामचन्द्र की भुजा मेरे कंठ में पड़ेगी या तुम्हारी तीक्ष्ण तलवार। (भाव यह है कि तेरी भुजा मेरे कंठ में नहीं पड़सक्ती तू चाहे तलवार से मेरा मस्तक भले ही काटले)॥

चौ० — *चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति विरह अनल संजातं ॥
शीतल निशि तव असि वरधारा। कह सीता हरुमम दुख भारा ॥

शब्दार्थ — चंद्रहास (चंद्र = चांद + हास = चमक) = जिस की चमक चन्द्रमा के सदृश हो, तलवार । परिताप = दुःख ।

अर्थ — सीता जी (तलवार से मानो) यों कह रहीं हैं कि हे चन्द्रहास ! रघुनाथ जी के बिछोहरूपी अग्नि से उत्पन्न हुई मेरी जलन को तू दूर कर दे और

---

* चंद्रहास नाम की तलवार मिलने की कथा यों है कि—एकबार दशमुख पुष्पक विमान में बैठकर कैलाश पर्वत पर गया । वहां पर नन्दी को बन्दर कैसा मुख व छोटे हाथ वाला देखकर हँस उठा । इस पर क्रोधित हो नन्दी ने श्राप दिया कि तेरा नाश बानर ही करेंगे । सुनते ही दश मुख को बड़ा क्रोध आया और वह कैलाश उठाने का प्रयत्न करने लगा ॥ महादेव जी को जब यह हाल मालूम हुआ तो उन्हों ने अपनी अलौकिक शक्ति से कैलाश को धर दबाया। ऐसा करने से दशकंठ के हाथ उस में दब गये, फिर वह ज़ोर से चिल्लाने लगा । निदान प्रार्थना करने से भोला नाथ ने उस का रोना सुनकर 'रावण' ऐसा नाम रक्खा, फिर उस के हाथ पर्वत के नीचे से सुरक्षित निकाल दिये और स्तुति से प्रसन्न हो चन्द्रहास नामी तलवार उसे दी । यही चन्द्रहास है कि जिस से वह सीता जी को मारना चाहता था और उस का शब्दार्थ चन्द्र सरीखी शीतलता पर विचार कर सीता जी ने भी कहा था कि—

'चन्द्रहास हरु मम परितापं । रघुपति विरह अनल संजातं ॥

बोलीं (हे रावण !) तेरे खड्ग की उत्तम धार शीतल रात्रि के समान है उस से तू मेरे भारी दुःख को दूर कर ॥

चौ०—सुनत वचन पुनि मारन धावा । *मयतनया कहि नीति बुझावा ॥
कहसि सकल निशिचरिन्हबुलाई । सीतहि बहुविधि त्रासहुजाई ॥
मासदिवस महँ कहा नमाना । तौ मैं मारब कठिन कृपाना ॥

अर्थ—इन वचनों को सुनते ही रावण मारने को दौड़ा, परन्तु मंदोदरी ने न्याय की बात सुझा कर समझाया । तब फिर संपूर्ण राक्षसियों को बुलाकर कहने लगा, तुम सब जाकर सीता को नाना प्रकार से भय दिखाओ । जो मेरा कहना महीना भर में न मानैगी तौ मैं तीक्ष्ण तलवार से शिर काट लूँगा ॥

दो०—†भवन गयउ दशकंध तब, इहां निशाचरि वृन्द ।
सीतहि त्रास दिखावहीं, धरहिं रूप बहुमंद ॥ १० ॥

अर्थ—तब रावण तौ अपने महलों में चला गया और वज्रमूर्ख राक्षसियों के समूह नानाप्रकार के रूप धारण कर सीता को डर दिखाने लगीं ॥

---

* मयतनया कहि नीति बुझावा—स्त्री हत्या का भारी पातक होता है देखो मनुस्मृति अध्याय ११ श्लोक १९१ ।

श्लो०—बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्म्मतः ।
शरणागत हन्तृंश्च स्त्री हन्तृंश्च न संवसेत् ॥

अर्थात् बाल हत्यारा, कृतघ्न, शरणागत को मारने वाला तथा स्त्री हत्यारा ये यदि धर्मपूर्वक प्रायश्चित्त से शुद्ध भी हो जावें तौ भी इन के साथ किसी प्रकार का संसर्ग न करै ॥

† भवन गयउ दशकन्ध तब, इहां निशाचरि वृन्द...राम रसायन रामायण के अनुसार राक्षसियों के सार्थक नाम तथा पैशाचिक काम —

चौबई छन्द — इक नैनी कोऊ इक कर्णी कोऊ बहु दृगवारी ।
कोऊ गज कर्णी खर कर्णी कोउ नाग दंतारी ॥
कोऊ ब्याल मुखी लंबोदरि लंब कुची कुचहीना ।
कोऊ हस्त चरण इक एकै कोऊ अगणित कीना ।
कोऊ सीस विहीन बहुत शिर कोऊ अगणित नासा ।
कोउ अर्ध कोऊ अनासिका कोऊ बहु मुख भासा ॥
कोऊ शूकर श्वान सिंह मुख कोऊ गिरि वपु धारा ।
कोऊ अतिलघु इमि निशाचरी विविधि कराल अपारा ॥
कोऊ बाँधि मुष्टिका धावैं सियहि प्रहारण काजा ।
कोऊ दशन काढ़ि मुख फारैं भक्षण हित करि गाजा ॥
कोऊ लै कृपाण कर दौरैं कोऊ शूल भमावैं ।
यौं ही विकट निश्चरी सीतहि बहुविधि त्रास दिखावैं ॥

चौ०—*त्रिजटा नाम राक्षसी एका । रामचरण रत निपुण विवेका ॥
सबहि बुलाय सुनायसि सपना । सीतहि सेइ करौ हित अपना ॥

अर्थ—त्रिजटा नाम की एक राक्षसी जो रामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम रखती थी और जो समझदार तथा चतुर थी । (वहां की) सब राक्षसियों को अपना सपना सुनाकर कहने लगी कि सीता जी की सेवा कर अपना स्वार्थ साधन करो ॥

चौ०—सपने बानर लंका जारी । यातुधान सैना सब मारी ॥
खर †आरूढ़ नगन दशसीसा । मुंडित शिर खंडित भुज बीसा ॥

अर्थ—सपने में (मैं ने देखा कि) बंदर ने लंका को जला दिया और सब राक्षसों की सेना मार डाली और रावण भी नंगा शिर मुड़ाये और बीसों हाथ कटाये गधे पर सवार था ॥

चौ०—यहि विधि सो ‡दक्षिण दिशि जाई । लंका मनहुँ विभीषण पाई ॥
नगर फिरी रघुवीर दोहाई । तब प्रभु सीतहि बोलि पठाई ॥

अर्थ—इस प्रकार रावण तो दक्षिण दिशा को चला गया और लंका मानो विभीषण को मिलगई । नगर भर में रामचन्द्रजी का अधिकार होगया, तब उन्हों ने सीता जी को बुलवा लिया ॥

चौ०—यह सपना मैं कहौं विचारी । होइहि सत्य गए दिन चारी ॥
तासु वचन सुन ते सब डरीं । जनकसुता के चरणन्ह परीं ॥

---

* त्रिजटा—पंचवटी से सीता का हरण कर रावण ने उन्हें अशोक वाटिका में रक्खा था । वहां पर इन की रक्षा करने के हेतु त्रिजटा नाम की एक वृद्धा राक्षसी को नियत किया था । यह राक्षसी होने पर भी सीता जी के साथ साधारण वर्त्ताव करती रही । इस के हाथ के नीचे द्विअक्षी, त्रिअक्षी दीर्घ जिव्हा, अजिव्हिका, एक पादा, एक लोचना, एक जटा, हरि जटा, आदि अनेक राक्षसियां थीं । त्रिजटा के स्वप्न आदि का हाल रामायण ही में है ॥

† खर आरूढ़ नगन दश सीसा—स्वप्न में ऐसा दिखाई देने से उस जीव की मृत्यु निकट समझी जाती है इसी प्रकार जो २ अपशकुन सूचक स्वप्न होते हैं वे विस्तार पूर्वक अयोध्याकाण्ड की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० ३३४ में मिलैंगे ॥

‡ दक्षिण दिशि जाई—दक्षिण दिशा से संकेत यमपुरी का है कारण दशों दिशाओं का एक२ दिग्पाल है उनमें से दक्षिण दिशा में यम का अधिकार है । अयोध्याकाण्ड की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० ७ में दिशाओं के विषय में देखो ॥

अर्थ—मेरे विचार में ऐसा आता है कि यह स्वप्न चारेक दिन में ठीक उतरेगा। त्रिजटा के वचन सुन सब राक्षसियां डर गईं और उन्हों ने सीता जी के चरणों की शरण ली ॥

दो०—जहँ तहँ गईं सकल तब, सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीते मुमोहि, मारिहि निशिचर पोच ॥११॥

शब्दार्थ—पोच (फ़ारसी पूच)=नीच ॥

अर्थ—तब सब राक्षसियां जहां की तहां चलीं गईं परन्तु सीता जी के मन में यह चिन्ता लगी रही कि, तीस दिन हो जाने पर यह नीच राक्षस मुझे मार डालेगा ॥

चौ०—त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु विपति संगिनि तैं मोरी ॥
तजउँ देह करु वेगि उपाई। दुसह विरह अब नहिं सहि जाई॥

अर्थ—(सीता जी) हाथ जोड़कर त्रिजटा से कहने लगीं कि हे माता! तू संकट में मेरी सहायक रही है। जल्दी से ऐसा उपाय कर कि मैं अपना शरीर छोड़ दूं, कठिन वियोग दुःख अब नहीं सहा जाता ॥

चौ०—आनु काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहु लगाई ॥
सत्य करहु ममप्रीति सयानी। सुनइ को श्रवण शूल सम बानी॥

अर्थ—हे माता! लकड़ियां ले आओ और अर्थी बनाकर फिर उसमें आगी लगादो। हे चतुरे! मुझ पर अपने प्रेम को ठीक निबाहो, कानों को वज्र, समान (रावण के) वचन सुनै कौन? दूसरी लकीर का दूसरा अर्थ—हे चतुरे! तुम चिता पर मुझे भस्म करने से मेरी प्रीति रामचन्द्र जी पर जो है सो सत्य करो ॥

चौ०-सुनत वचन पद गहि समुझायेसि। प्रभुप्रतापबलसुयश सुनायेसि ॥
निशि न अनल मिलि राजकुमारी।‡असकहि सो निजभवन सिधारी॥

---

‡ अस कहि सो निज भवन सिधारी—स्मरण रहे कि त्रिजटा बड़ी बुद्धिमती थी उसे जो स्वप्न में बंदर का आना आदि हाल मालूम हुआ उसी के सहारे से उसने सम्पूर्ण राक्षसियों को समझाकर सीता जी के पास से अलग कर दिया और आप भी 'निशि न अनल मिलि राजकुमारी' इन शब्दों को कहकर वहां से चली गई इस अभिप्राय से कि रामदूत को सीता जी से एकान्त में रामचन्द्र जी का संदेशा कहने का अवसर मिल जावे, यही आशय विजय दोहावली में स्पष्ट किया है जैसे—

दोहा—पवनपुत्र पहुँचे जहां, बैठी बनसिय माय ।
त्रिजटा आई भवन को, प्रगट भयो कपिराय ॥

अर्थ—वचनों को सुनते ही त्रिजटा ने पांव पड़कर समझाया और रामचन्द्रजी का प्रभाव, पराक्रम तथा यश कह सुनाया । "हे राजकुमारी रात्रि के समय अग्नि नहीं मिल सक्ती" इतना कह कर वह अपने घर चली गई ।।

चौ०—कह सीता विधि भा प्रतिकूला। मिलहि न पावक मिटै न शूला॥
देखियत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकौ तारा॥

अर्थ—सीता जी विचारने लगीं कि विधाता तो पलट गया, कारण न अग्नि मिलेगी और न मेरा दुःख दूर होगा । आकाश में तारे अंगारे रूप दिखाई देते हैं पर उन में से एक भी तौ पृथ्वी पर नहीं टपक पड़ता ।

चौ०—†पावकमय शशि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
सुनहु विनय मम विटप अशोका। सत्य नाम करु हरु मम शोका॥

अर्थ—अग्नि से भरा हुआ यह चंद्रमा अग्नि को नहीं झराता । मानो उस ने मुझे भाग्यहीन सा समझ लिया है (भाव यह है कि विरह के दुःख में शीतल चंद्रमा दाह करने वाला समझ पड़ता है) । हे अशोक वृक्ष ! तुम मेरी विनती सुन लेओ मेरे दुःख को दूर कर अपने नाम को सार्थक करो (अर्थात् यदि तुम मुझे दुःख रहित करोगे तौ तुम्हारा नाम अशोक "अर्थात् नहीं है शोक जिस में" यह ठीक होगा, यदि मैं दुःख सहित रही तौ फिर तुम "सशोक" समझे जाओगे न कि 'अशोक') ॥

चौ०—नूतन किसलय अनलसमाना। देहु अगिनि मम करहु निदाना॥
देखि परम विरहाकुल सीता। सो क्षण कपिहिं कल्पसम बीता॥

शब्दार्थ—नूतन = नये। किसलय = पत्ते । निदान = अन्त समय अर्थात् मृत्यु।

अर्थ—नये पत्ते अग्नि के समान (लाल) हैं, सो अग्नि गिरा कर मेरा अन्त करो अर्थात् मुझे जलादो। सीता जी को वियोग से बहुत ही दुखित देख हनुमान् जी को वह पल मानो करोड़ों वर्ष के तुल्य हो गया (अर्थात् बड़ी कठिनाई से वह समय बीता) ॥

† पावक मय शशि स्रवत न आगी—क्याही उपयुक्त यह भाव चन्द्र के विषय में है—

सवैया—टुक जीय विचारौ अहो द्विजराज अजौं दुख दीन को देखि लचौ ।
'रसिकेस' सु शीतलता तजिकै मोहि हेत वृथा जनि ताप तचौ ॥
यह बात भली जु न मानहु तौ पछितैहौ घने बहु नाच नचौ ।
प्रथमै हिय कारो भयो पै अबै मुख कारो भये बिन नाहिं बचौ ॥

सो०—कपि करि हृदय विचार, दीन्ह मुद्रिका डारि तब ।
जनु अशोक अंगार, दीन्ह हर्षि उठिकर गहेउ ॥ १२ ॥

अर्थ—हनुमान् जी ने मन में विचार बांध रामचन्द्र जी की मुद्रिका डाल दी मानो अशोक वृक्ष ने अंगार टपका दिया हो, उसे सीता जी ने प्रसन्नतापूर्वक हाथ में उठा लिया, (इस से सीता जी के विरह की आधिक्यता सूचित होती है क्योंकि उन्हों ने मुद्रिका ही को अंगार समझ प्रसन्नतापूर्वक उठा लिया) ।

चौ०—तब देखी मुद्रिका मनोहर । रामनाम अंकित अतिसुंदर ॥
चकित चितइ मुद्रिक पहिचानी । हर्ष‡विषाद हृदय अकुलानी ॥

अर्थ—तब उन्हों ने उस सुन्दर मनमोहनी मुदरी को जिस पर राम नाम लिखा था देखा । मुद्रिका को पहिचान चकित हो देखने लगीं, हृदय में आनंद और दुःख होने से घबड़ा उठीं ॥

सूचना—हर्ष मुद्रिका पाने का और विषाद इस विचार से कि वह कैसे आई ॥

चौ०—जीति को सकइ अजय रघुराई । माया ते असि रची न जाई ॥
सीता मन *विचार कर नाना । मधुर वचन बोले हनुमाना ॥

अर्थ—"रामचन्द्र जी अजय हैं उन्हें कौन जीत सक्ता है," (फिर भी) "माया से ऐसी बन नहीं सक्ती" । इस प्रकार जब सीता जी के मन में अनेक कल्पनाएँ उठ रहीं थीं कि इतने में हनुमान् जी मधुर वचन बोल उठे ॥

चौ०—रामचन्द्र गुण वर्णन लागे । सुनतहि सीता कर दुख भागे ॥

अर्थ—वे रामचन्द्रजी के चरित्र कहने लगे, जिन्हें सुन सीताजी के दुःख दूर हुए ।

‡ हर्ष विषाद हृदय अकुलानी—

कवित्त—दृगन छुवावैं गहि शीस पै चढ़ावैं ताहि हृदय लगावैं बारंबार दुलरावैं हैं ।
फेरि फेरि हेरैं हेरि हेरि कै कपोल भेरैं भेरि कंठ फेरैं फेरि हेरि हुलसावैं हैं ॥
पीयगति बूझैं बूझि बूझि कै अरूझैं करजोरि जोरि कोरि कोरि विनय सुनावैंहैं ।
'रसिक विहारी' पति मुद्रिका निहारी सीय छिन सुधि लावैं छिन प्रेममें भुलावैंहैं॥

* सीता मन विचार कर नाना—

राग बिहाग—दरश कब देहौ श्री रघुवीर ॥
दशा कहौं कासे दुख की मैं, उठत करेजे पीर ।
धिक ये प्राण रहे रघुवीर बिन, धिक यह अधम शरीर ॥
बिन अपराध त्यागि मोहिं दीन्हों, भई कौन तकसीर ।
कहत 'शारदा' प्राण बचावो चलन चहत हिय चीर ॥

लागी सुनै श्रवण मन लाई । ‡आदिहि ते सब कथा सुनाई ॥

अर्थ–और वे कान लगाकर ध्यान से सुनने लगीं तो हनुमान् जी ने आरम्भ ही से सब राम कथा कह सुनाई ॥

चौ०–श्रवणामृत जेहि कथा सुनाई । कहि सो प्रकट होत किन भाई ॥
तब हनुमन्त निकट चलि गयऊ । फिरि बैठी मन विस्मय भयऊ ॥

अर्थ–जिस ने कानों को अमृत के समान सुखदाई कथा कह सुनाई सो हे भाई प्रकट दिखाई क्यों नहीं देता ? तब हनुमान् जी समीप आ खड़े हुए फिर सीता जी ने पीठ फेर ली कारण उन्हें संदेह हुआ ॥

सूचना–पतिव्रता स्त्रियों का धर्म है कि वे पर पुरुष के सन्मुख नहीं होतीं और न उस से बात चीत करती हैं यदि ऐसा अवसर आ भी जावे तो किसी वस्तु की ओट में होकर अथवा मुँह फेर कर बातचीत करती हैं यथा रावण के साथ "तृणधरि ओट कहति वैदेही" और यहां हनुमान् को न पहिचान "मुँह फेर बैठीं" ॥ विस्मय इस बात से हुआ कि यह बन्दररूपधारी रावण ही तो नहीं है ॥

चौ०–रामदूत मैं मातु जानकी । सत्य शपथ करुणानिधान की ॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी । दीन्हि राम तुम कहँ सहिदानी ॥

अर्थ–हनुमान् जी बोले हे जानकी माता ! मैं दयासागर श्रीरामचन्द्र जी की

‡ आदिहि ते सब कथा सुनाई–वह कथा संक्षेप में यों है– इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न दशरथ नाम के बड़े प्रतापी राजा अयोध्या नगरी में राज्य करते थे । इन के राम, लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न ये चार पुत्र हुए । ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र जी अपनी स्त्री सीता और भाई लक्ष्मण के साथ पिता की आज्ञा मान बन को सिधारे ! वहां पर गोदावरी के तीर पंचवटी में पर्णकुटी बना कर रहने लगे । वहीं पर जटायु गिद्ध से मित्रता हुई । कुछ काल के पश्चात् सूर्पनखा की नाक और कान काटे तथा खर दूषण त्रिशिरा को सेना समेत मार डाला । ज्योंहीं एकबार कपट मृग को मारने गये त्योंहीं छल से दुष्ट रावण ने सीता का हरण किया । शोक में विह्वल हो रामचन्द्र जी ने मार्ग में जटायु गिद्ध को रावण द्वारा घायल पड़ा देखकर मुक्ति दी । उन्हों ने ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव से मिताई की और उस के बड़े भाई बालि का बध किया । सुग्रीव ने सीता की खोज में अनेक वानर सब दिशाओं में भेजे उन्हीं में से एक मैं हनुमान् सुग्रीव का मंत्री सौ योजन समुद्र को लांघ कर आया हूं । मैं सीता जी को खोजते खोजते इस अशोक वाटिका में आ पहुँचा हूं और यहीं शीशम के वृक्ष पर से रामचन्द्र जी की रानी सीता महारानी को देख रहा हूं । इतना कह बुद्धिमान् हनुमान् चुप हो रहे ॥

सौगंध खाकर सत्य कहताहूं कि मैं उन का दूत हूं। हे माता ! यह मुद्रिका भी मैं ही लाया हूं, रामन्चद्र जी ने यह तुम्हें पहिचान के निमित्त दी है ॥

चौ०—नर बानरहिँ संग कहु कैसे । कही कथा संगति भइ जैसे ॥

अर्थ—(सीता जी बोलीं) मनुष्य और बंदर की संगति कैसे हुई, (तब तो हनुमान् जी ने) वह सब वार्त्ता कह सुनाई जिस प्रकार से सङ्गति हुई थी ॥

दो०—कपि के वचन सप्रेम सुनि, उपजा मन विश्वास ।
जाना मन क्रम वचन यह, कृपासिंधु कर दास ॥ १३ ॥

अर्थ—हनुमान् जी के प्रीति से भरे हुए शब्दों को सुन जानकी जी को यह भरोसा हो गया कि मनसा वाचा कर्मणा से यह दयासागर प्रभु का सेवक है ॥

चौ०—हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी ॥
बूड़त विरह जलधि हनुमाना भयहु तात मो कह जलयाना ॥

अथ—उन्हें रामभक्त समझते ही उन पर विशेष प्रेम बढ़गया, नेत्रों में आंसू भर आये और शरीर रोमांचित हो गया । (वे कहने लगीं) हे प्यारे हनुमान् जी ! तुम तो बिछोहरूपी समुद्र में डूबती हुई मुझ को नौका के समान हो गये (अर्थात् तुमने मुझे विरह के दुःख से बहुत कुछ बचा लिया) ॥

चौ०—अबकहु कुशल जाउँ बलिहारी । अनुज सहित सुखभवन खरारी ॥
कोमल चित कृपालु रघुराई । कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥

अर्थ—अब मैं तुम्हारी बलैयां लेती हूं तुम कहो तो आनन्दकारी श्री अवध-बिहारी जी अपने भाई सहित कुशलपूर्वक तो हैं। हे हनुमान् जी ! श्रीरघुनाथ जी तो मृदु स्वभाव वाले तथा दयालु हैं, उन्हों ने किस कारण से यह निठुरता धारण की है॥

चौ०—सहज बानि सेवक सुखदायक । कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम शीतल‡ ताता। हुइहैं निरखि श्याम मृदुगाता॥

---

‡ कबहुँ नयन मम शीतल ताता। हुइहैं निरखि श्याम मृदुगाता — गीतावली रामायण से।
कबहुँ कपि राघव आवहिंगे ।
मेरे नयन चकोर प्रीतिवश राकाशशि मुख दिखरावहिंगे ॥ १ ॥
मधुर मराल मोर चातक है लोचन बहु प्रकार धावहिंगे ।
अंग अंग छवि भिन्न भिन्न सुख निरखि निरखि जहँ तहँ छावहिंगे ॥ २ ॥
विरह अग्नि जरि रही लता ज्यों कृपादृष्टि जल पलुहावहिंगे ।
निज वियोग दुख जानि दयानिधि मधुर वचन कहि समुझावहिंगे ॥ ३ ॥
लोक पाल सुर नाग मनुज सब परे बंदि कब मुकतावहिंगे ॥ ४ ॥
रावण वध रघुनाथ विमल यश नारदादि मुनि कब गावहिंगे ।
तुलसिदास प्रभु मोह जनितभ्रम भेद बुद्धि कब बिसरावहिंगे ॥ ५ ॥

अर्थ—रघुनाथ जी का स्वाभाविक प्रण तो "सेवकों को सुख देना" ऐसा है क्या वे कभी मेरी सुध करते हैं ? हे प्यारे क्या कभी मेरे नेत्र श्यामले मृदु शरीर वाले प्रभु को देख ठंढक लहैंगे ?

चौ०—वचन न आव नयन भरि वारी। अहह नाथ मोहि निपट बिसारी ॥
देखि परम विरहाकुल सोता। बोलेउ कपि मृदु वचन विनीता ॥

अर्थ—(इतना कह सीता जी) फिर अधिक न बोल सकीं नेत्रो में आंसू भर आये, (और यह गद्गद वाणी निकल पड़ी) 'अहह नाथ मोहि निपट बिसारी' (अर्थात् हे स्वामी आपने मेरी सुध बुध बिसार दी)। (इस प्रकार) सीता जी को विछोह के दुःख से बहुतही व्याकुल देख हनुमान् जी नम्रता पूर्वक मधुर वचन बोले ॥

चौ०—मातु कुशल प्रभु अनुजसमेता। †तव दुखदुखी सु कृपानिकेता ॥
जनि जननी मानहु जिय ऊना। तुम ते प्रेम राम कहँ दूना ॥

अर्थ—हे माता! रामचन्द्र जी लक्ष्मण समेत कुशल क्षेम से हैं परन्तु कृपासागर प्रभु तो तुम्हारे वियोग से दुखित हैं। हे माता! तुम अपने हृदय से रामचन्द्र जी के प्रेम को कम मत समझो, उन का प्रेम तो तुम्हारे ऊपर तुम से भी दूना है ॥

सूचना—सीता जी ने जो अपनी व्याकुलता ऊपर प्रकट करते हुए ऐसे प्रश्न किये थे कि, "कपि केहि हेतु धरी निठुराई" "कबहुँक सुरति करत रघुनायक," निदान अधीर हो यह कह उठी थीं कि "अहह नाथ मोहि निपट बिसारी" इस प्रकार चित्त की विह्वलता दूर करने को चतुर दूत ने दूना प्रेम कह सुनाया ॥

दो०—रघुपति के *संदेश अब, सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गद्गद भयउ, भरे विलोचन नीर ॥ १४ ॥

अर्थ—हे माता! अब धीरज धर के रामचन्द्र जी का संदेशा सुनो, इतना वचन कहते ही हनुमान् जी का कंठ भर आया और उनके नेत्रों में आंसू आगये ॥

---

† तव दुख दुखी सु कृपानिकेता——
कवित्त—गावैं रावरे ही गुण ध्यावैं रावरो ही रूप बंधु से सु रावरी ही चरचा चलावैं हैं।
'रसिक विहारी' रघुवीर ढिग आवैं कोउ तासों हठि रावरी ही चरचा चलावैं हैं ॥
करैं कछु काम लेत रावरो प्रथम नाम रावरी कथा में वसु याम बिलमावैं हैं।
परम विचित्र चित्र रावरो सु पत्रन पै लिखि लिखि वार वार हृदय लगावैं हैं ॥

* रघुपति के संदेश अब, सुनु जननी धरि धीर—रामयश दर्पण नाटक से।
कवित्त—किमि मात कहौं जिमि नाथ कही दृग नीर भरे अति कांपति गातहिं।
कहियो मम प्राण प्रिया सों कहा कहौं पाई न शोध को नेकहु बातहिं ॥
उर धीर धराइ कहो समुझाइ के आवत हौं सँग वीर ल भ्रातहिं।
अस कौन बली सहि जो सकै झारन मेरे हजारन बान को घातहिं ॥

चौ०—कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहँ सकल* भयउ बिपरीता॥
नूतन किसलय मनहुँ कृशानू। काल निशा‡ सम निशि शशिभानू॥

शब्दार्थ—नूतनकिसलय = नयेपत्ते।

अर्थ—रामचन्द्र जी ने कहा है कि हे सीता! तुम्हारे बिछोह से मुझे सब कुछ उलटा ही उलटा हो गया है। जैसे वृक्षों के नवीन पत्ते अग्नि समान, रात्रि मानो प्रलय की रात्रि और चन्द्रमा सूर्य सा हो गया है॥

चौ०—कुवलय बिपिन कुंतबन सरिसा। बारिद तपतेल जनु बरिसा॥
जेहि तरु रहौं करत सोइ पीरा। उरग श्वाससम त्रिविधसमीरा॥

शब्दार्थ—कुवलय विपिन = कमलों का वन। कुंतवन = (कुंत = भाला + वन = समूह) = भालों का समूह॥

अर्थ—कमलों के समूह भालों के समूह के सदृश समझ पड़ते हैं और बादलों से मेह जो बरसता है सो मानो गरम तेल बरसता है। जिस वृक्ष के नीचे जा बसता हूं वही दुखदाई समझ पड़ता है और तीन प्रकार की वायु अर्थात् शीतल, मंद सुगन्धित सर्प की फुसकार के सदृश विषहरी बूझ पड़ती है॥

चौ०—†कहेहू ते कछु दुख घटि होई। काहि कहउँ यह जान न कोई॥

---

* मो कहँ सकल भयउ विपरीता—वियोग समय वस्तुओं की विपरीतता हनुमन्नाटक में बड़ी उत्तमरीति से दरशाई है यथा।

श्लोक—चंद्रश्चंडकरायते मृदुगति र्वातोऽपि वज्रायते।
माल्यं सूचिकुलायते मलय जो लेपः स्फुलिंगायते॥
रात्रिः कल्पशतायते विधि वशात्प्राणोऽपि भारायते।
हा हन्त! प्रमदावियोग समयः संहार कालायते॥

अर्थात् मेरे लिये चंद्रमा सूर्य के समान संतापदायक हो गया है, मन्द २ चलने वाली हवा भी वज्र सी जान पड़ती है, फूलों की माला भी सुइयों सी छिदती है, चन्दन का लेप अग्नि की चिनगारियों सा जान पड़ता है। रात्रि सैकड़ों कल्प के समान हो गई, दैव की विपरीतता से प्राण भी भार भूत हो रहे हैं। हाय! अधिक क्या कहूं सीता के वियोग का समय मुझे तो प्रलयकाल की नाईं हो गया है।

‡ काल निशा = प्रलय की रात्रि देखो अयोध्या काण्ड श्री विनायकी टीका की टि० पृ० १२२.

† कहेहू ते कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई॥

राम रसायन रामायण में लिखा है——

सवैया—कौन सुनै अरु कासों कहौं पुनि साँचिये कोउ न मानत है।
जेहि व्यापी नहीं था वियोग व्यथा सु कहा दुख को पहिचानत है॥
'रसिकेस' कहूं विरही जो मिलै विरही गति सो उर आनत है।
नर नारि सयोगी वियोगी कहा मिलिकै बिछुरो सोइ जानत है॥

†तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मेरा ॥

अर्थ—कहने से भी कुछ दुःख घटता है, परन्तु क्या कहूं मेरे दुःख को कोई नहीं जानता। हे प्यारी! तुम्हारे और मेरे प्रेम का सार केवल मेरा मन ही जानता है ॥

चौ०—*सो मन रहत सदा तोहि पाहीं। जानु प्रीतिरस इतनेहिं माहीं ॥
प्रभु संदेश सुनत वैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहि तेही ॥

अर्थ—वह मन सदैव तुम्हारे पास रहता है, बस मेरी प्रीति का सार इतने ही से समझ लेना। विदेह तनया रामचंद्र जी के संदेश को सुनतेही प्रेम में ऐसी डूब गईं कि उन्हें अपने शरीर की सुध न रही ॥

सूचना—पाठकवृन्द देखिये तो कवि जी की शब्द योजना को, जिन्हों ने विरह की व्याकुलता में देह की सुध न रहने के समय पर सीता जी के अनेक नामों में से 'वैदेही' अर्थात् विदेह राजा (जिन्हें अपने देह का भान न रहता था) उस नाम से बने हुए शब्द का उपयोग किया ॥

चौ०—कह कपि हृदय धीरधरु माता। सुमिर राम सेवक सुखदाता ॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम वचन तजहु विकलाई ॥

अर्थ—हनुमान् जी कहने लगे हे माता! मन में धीरज रक्खो और भक्तों के सुख देने वाले श्री रामचन्द्र जी का स्मरण करो। अपने हृदय में रघुनाथ जी के प्रभाव को विचारो और मेरे कहने पर ध्यान देकर व्याकुलता का त्याग करो ॥

दो०—निशिचर निकर पतंग सम, रघुपति बाण कृशानु।
जननि हृदय निज धीर धरु, जरे निशाचर जानु ॥ १५ ॥

अर्थ—राक्षसों के समूह पतंगों के समान हैं और श्री रामचंद्र के बाण अग्नि समान हैं। सो हे माता! मन में धीरज धरो और समझो कि राक्षस अब जलना ही चाहते हैं (जिस प्रकार अग्नि में पतंगे भुँज मरते हैं) ॥

† तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा—
(देखो अयोध्याकाण्ड श्री विनायकी टीका टि० पृ० २१७.)

* सो मन रहत सदा तोहि पाहीं। जानु प्रीतिरस इतनेहि माहीं—चाणक्य नीति—

श्लोक—दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसिस्थितः।
यो यस्य हृदये नास्ति समीपस्थोऽपि दूरतः ॥

अर्थात् जो जिस के हृदय में रहता है वह दूर भी हो तौभी दूर नहीं जो जिस के मन में नहीं है वह समीप भी हो तौभी दूर है। जैसा कहा है—

दो०—नेहा निपट नजीक है, यद्यपि कोस हजार।
बिना नेह को पौरिया मनो सिंधु के पार ॥

चौ०—जो रघुवीर होत सुधि पाई। करते नहिं विलंब रघुराई॥
रामवाण रविउदय जानकी। तम वरूथ कहँ यातुधान की॥

शब्दार्थ—वरूथ = झुंड। यातुधान = राक्षस।

अर्थ—जो रघुश्रेष्ठ रामचन्द्रजी ने तुम्हारा पता पाया होता, तो फिर वे देर न लगाते। हे जानकी जी! रामचन्द्र जी के वाण सूर्योदय के समान हैं, उनके साम्हने राक्षसों की अन्धकार रूपी सेना किस लेखे में है (अर्थात् जैसे सूर्य के उदय होते ही अन्धकार का नाश होता है वैसे ही रामवाण के आगे राक्षसों की माया हानि होगी)॥

चौ०—अबहिं मातु मैं जाउँ लिवाई। प्रभु आयसु नहिं रामदोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरुधीरा। कपिन्ह सहित ऐहैं रघुवीरा॥
निशिचर मारि तुमहिँ लै जैहैं। तिहुँ पुर नारदादि यश गैहैं॥

अर्थ—हे माता! मैं तुम्हें अभी लिवा ले जाता परन्तु मैं रामचन्द्र जी की सौगंध खाकर कहता हूं कि प्रभु की ऐसी आज्ञा है नहीं। हे माता कुछ दिन धीरज धरो, रामचन्द्र जी वानरों समेत आवैंगे। वे राक्षसों को मारकर तुम्हें लिवा ले जावैंगे तब उन की कीर्त्ति तीनों लोक में नारद आदि मुनीश्वर वर्णन करैंगे॥

चौ०—हैं सुत कपि सब तुमहिं समाना। यातुधान भट अति बलवाना॥
मोरे हृदय परम संदेहा। ‡सुनि कपि प्रकट कीन्ह निज देहा॥

अर्थ—हे प्यारे? क्या सब वन्दर तुम्हारे ही समान (छोटे) हैं (यहां) राक्षसों के योधा बड़े ही बलवान् हैं। (इसी हेतु) मेरे मन में भारी सन्देह होता है (इन वचनों को) सुनते ही महावीर जी ने अपना यथार्थ शरीर प्रकट किया॥

---

‡ सुनि कपि प्रकट कीन्ह निज देहा—इस का वर्णन श्री महादेव जी पार्वती प्रति यों करते हैं

श्लोक—श्रुत्वा तद्वचनं देव्यै पूर्व रूपम दर्शयत्
मेरु मंदर संकाशं रक्षोगण विभीषणम्॥

अर्थ—सीता जी का यह वचन सुनते ही हनुमान् ने उन के सन्मुख अपना यथार्थ रूप प्रकट किया अर्थात् सुमेरु और मंदराचल के सदृश (सो यों कि स्वर्ण की सी आभा और पहाड़ों की नाईं बड़े भारी डील वाला) तथा राक्षसों को बहुत भय उपजाने हारा रूप दिखलाया.

चौ०—†कनक भूधराकार शरीरा। समर भयंकर अति बलवीरा ॥
सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघुरूप पवनसुत लयऊ ॥

अर्थ—सो शरीर सोने के पर्वत के समान था, जो युद्ध के हेतु बड़ा भयदायक और बलाढ्य था। तब तो सीता जी के हृदय में विश्वास आगया और हनुमान् जी ने फिर छोटा रूप धारण कर लिया ॥

दो०—सुनुमाता शाखामृगहि, नहिं बल बुद्धि विशाल।
प्रभु प्रताप ते गरुड़ ही, खाइ परमलघु व्याल ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—शाखामृगहि = डाली के जानवर को अर्थात् बंदर को (योगरूढ़ि)

अर्थ—(और बोले) हे माता ! सुनो बंदर को बड़ी शक्ति और बुद्धि तो नहीं रहती परन्तु ईश्वर के प्रभाव से छोटा सा सर्प भी गरुड़ को खा सक्ता है (भाव यह है कि मैं बड़ा बलवान् तो नहीं हूं परंतु रामकृपा से बलवान् राक्षसों को मार सक्ता हूं) ॥

चौ०—मन संतोष सुनत कपि बानी। *भक्ति प्रताप तेज बल सानी ॥
आशिष दीन्ह राम प्रिय जाना। होहु तात बल बुद्धि निधाना ॥

† कनक भूधराकार शरीरा। समर भयंकर अति बलवीरा—हनुमान बाहुक से
छप्पय—स्वर्ण शैल संकास कोटि रवि तरुन तेज धन ।
उर विशाल भुज दंड चंड नख वज्र वज्र तन ॥
पिंग नयन भृकुटी कराल रसना दशनानन ।
कपिसकेस करकस लँगूर खल दल बल भानन ॥
कह 'तुलसिदास' बस जासु उर हनुसूरत मूरति विकट ।
सन्ताप पाप तेहि पुरुष कहँ सपनेहुँ नहिं आवत निकट ॥

* भक्ति प्रताप तेज बल सानी—हनुमान् जी के वचनों में जो स्वतः की भक्ति प्रताप तेज और बल इंगित है सो यों (१) बल यथा-'अबहिं मातु मैं जाउँ लिवाई' अभिप्राय यह है कि मुझ में इतना बल है कि तुम्हें अपने साथ ले जा सक्ता हूं (२) भक्ति यथा—'प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई' भाव यह कि मैं रामचन्द्र जी की आज्ञा को भक्ति पूर्वक मानता हूं इस से तुम्हें इतनी दुःखित देख कर भी उस आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सक्ता हूं. (३) प्रताप और तेज ये दोनों इस कथन से स्पष्ट हैं जैसे

दो—'सुनु माता शाखामृगहि, नहिं बल बुद्धि विशाल ।
प्रभु प्रताप ते गरुड़ ही, खाइ परम लघु व्याल ॥

अर्थात् मैं न कुछ बंदर भी रामचंद्र जी की कृपा से इतना प्रतापवान् और तेजस्वी हूं कि अपने भक्षण करने वाले राक्षसों को मूरामेट कर सक्ता हूं जैसे सर्प अपने भक्षक गरुड़ को खा सक्ता है.

अर्थ---हनुमान् जी के वचन जो भक्ति प्रभाव तेज और बल से परिपूर्ण थे सुन कर। उन्हें रामचंद्र जी का प्यारा समझ, आशीर्वाद दिया कि हे प्यारे! तुम शक्ति और बुद्धि से परिपूर्ण हो जाओ॥

चौ०—अजर अमर गुणनिधि सुत होहू। करहिं सदा रघुनायक छोहू॥
करहिं कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भरप्रेम मगन हनुमाना॥

अर्थ—हे लाल! तुम्हें बुढ़ापा न आवे, तुम अमर होओ और सब गुणों से परिपूर्ण होओ, तथा प्रभु तुम पर सदा कृपा करैं। "प्रभु तुम पर कृपा करैं" इन शब्दों को सुन कर, हनुमान् जी प्रेम में ऐसे मग्न हुए कि फूले नहीं समाये॥

चौ०—बार बार नायउ पद शीशा। बोले वचन जोरि कर कीशा॥
अब कृत्यकृत्य भयउँ मैं माता। आशिष तव अमोघविख्याता॥

अर्थ—हनुमान् जी बारंबार उनके चरणों पर शिर धर हाथ जोड़ कर कहने लगे। हे माता! अब मैं सफल मनोरथ हुआ क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि तुम्हारा आशीर्वाद अटल रहता है॥

चौ०—सुनिय मातु मोहि अतिशय भूखा। लागि देखि सुंदर फलरूखा॥
सुनु सुत करहिं विपिन रखवारी। परमसुभट रजनीचर भारी॥
तिन कर भय माता मोहि नाहीं। जो तुम सुख मानहु मनमाहीं॥

अर्थ---हे माता! सुनो इन वृक्षों में सुन्दर फल लगे हुए देख मुझे बहुत भूख लग आई है। सीता जी बोलीं हे प्यारे! सुनो इस उपवन को बड़े२ योधा राक्षसों के समूह रखा रहे हैं। हनुमान् जी बोले हे माता! जो तुम अपने मन में प्रसन्नता मानो तो फिर मुझे उन राक्षसों का भय नहीं है॥

दोहा---देखि बुद्धिबल निपुण कपि, कहा जानकी जाहु।
*धारि हृदय रघुपतिचरण, तात मधुर फल खाहु॥ १७॥

अर्थ—हनुमान् जी को बुद्धि और बल में परिपूर्ण देख, जानकी जी ने कहा कि हे तात! जाव और रघुनाथजी के चरणों को हृदय में धरकर मीठे२ फल खा आओ॥

* "धारि हृदय रघुपतिचरण, तात मधुर फल खाहु" ये सीता जी के वचन परम गूढ़ तत्व से भरे हुए हैं इन में प्राणियों के हेतु यह उपदेश निकलता है कि जो जीवधारी परमात्मा का ध्यान हृदय से किया करेगा उसे संसार में अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये मधुर फल प्राप्त होवेंगे नहीं तो नहीं॥

चौ०—चलेउ नाइ शिर पैठेउ बागा ।†फल खायेसि तरु तोरन लागा ॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे । कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे ॥

अर्थ—हनुमान् जी सीता जी को शिर नवा कर बगीचे में जा घसे और फलों को खाकर वृक्षों को तोड़ने लगे । वहां बहुत से योधा थे, उन में से बहुतेरों को उन्हों ने मार डाला और किसी २ ने जाकर रावण से पुकार की ॥

चौ०+नाथ एक आवा कपि भारी । तेइ अशोक वाटिका उजारी ॥
खायेसि फल अरु विटप उपारेसि । जहँ तहँ पटकि पटकि भट मारेसि ॥

अर्थ---हे स्वामी ! एक भारी बंदर आया है जिस ने सब अशोक वाटिका नष्ट कर दी । उस ने फल खाये वृक्ष उखाड़े और जहां पाये तहां ही योधाओं को पटक २ कर मारडाला ॥

चौ०—सुनि रावण पठये भटनाना । तिनहिं देखि गरजेउ हनुमाना ॥
सब रजनीचर कपि संहारे । गये पुकारत कछु अधमारे ॥

अर्थ---पुकार सुनते ही रावण ने अनेक योधा भेजे उन्हें देखते ही हनुमान् जी ने बड़ा भारी शब्द किया । हनुमान् जी ने बहुत से राक्षसों को मार डाला, जो अधमरे बचे सो फिर पुकारते हुए जा पहुंचे ॥

---

† फल खायेसि तरु तोरन लाग।—राम स्वयम्बर से

क०—ततन ततान के वितान तानि तानि तोरि, फोरि फोरि फसैं रोरि रोरि करि डार्‌यो है ।
सरसीन दौरि दौरि धूरि भूरि घोरि घोरि तरुण को टोरि टोरि ठौर ठौर पार्‌यो है ॥
कोरि कोरि महल कँगूरन को मोरि मोरि खंभन उखारि खोरि खोरि में पवार्‌यो है ।
बाहैं रज खौरि खौरि औधनाहै सौरि सौरि, केशरी किशोर शोर कै कै जोर धार्‌यो है ॥

+नाथ एक आवा कपि भारी । तेइ अशोक वाटिका उजारी ——

क०—माली मेघमाल बनपाल विकराल भट नीके सब काल सींचैं सुधासार नीर को ।
मेघनाद ते दुलारो प्राण ते पियारो बाग अति अनुराग जिय यातुधान धीर को ॥
'तुलसी' सो जानि सुनि सीय को दरश पाय पैठो वाटिका बजाइ बल रघुबीर को ।
विद्यमान देखत दशानन को कानन सो तहस नहस कियो सहसो समीर को ॥

इतने ही में राक्षसियां जो रखवाली के लिये थीं वे दौड़ीं और चिल्लाकर कहने लगीं—

क०—दौर दशकंध द्वार करत पुकार सब भीतर भवन तिन ख़बर जनायो है ।
कपिजौं कहां को एक जानकी निकट ह्वैके वाटिका में महाजोर जुलम मचायो है ॥
'यार' कहै प्रेरित कुवेर पुरहूत को है कै धौं रामदूत रन रंग रँगि आयो है ।
रावरे बिहार बन सकल उजार कियो जानि नहिं जात यह कौन को पठायो है ॥

चौ०—पुनि पठवा तेहिं‡अक्षकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि विटप गहितर्जा। ताहि निपातिमहाध्वनिगर्जा॥

अर्थ—फिर रावण ने अक्षयकुमार को भेजा, जो अनगिनती योधाओं को साथ लेकर आया। उसे देखतेही हनुमान् जी एक वृक्ष को उखाड़ उछल पड़े और अक्षयकुमार को मार बड़ा भारी शब्द कर गरज उठे॥

दोहा—†कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछुक मिलायेसि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारेऊ, प्रभु मर्कट बल भूरि॥ १८

अर्थ—और योधाओं में से कुछ तो मार डाले, कुछ मिथिल डाले और कुछ धूल में मिला दिये। कोई २ फिर से भी जाके गुहारने लगे कि हे स्वामी! बन्दर बड़ा बलवान् है॥

चौ०—सुनि सुतबध लंकेश रिसाना। पठवा * मेघनाद बलवाना॥
मारेसि×जनि सुत बाँधेसि ताही। देखौं कीश कहां कर आही॥

अर्थ—पुत्र का मारा जाना सुन रावण क्रोधित हुआ और उस ने बलवान् मेघनाद को यह कह कर भेजा कि बेटा उसे मारना मत बांध कर ले आना जिस में मैं देखूं कि कहां का बंदर है॥

---

‡ अक्षकुमार—रावण का पुत्र जो मन्दोदरी के गर्भ से उत्पन्न हुआ **था. अशोक** वाटिका उजाड़ने के कारण पहिले रावण ने अपने पांच सेनापति हनुमान् जी को पकड़ने के निमित्त भेजे थे, जब हनुमान् जी ने उन्हें मार डाला तो रावण ने अक्षयकुमार को भेजा जो आठ घोड़ों के रथ पर बैठ कर गया और **हनुमान् जी के हाथ से मारा गया.**

† **कछु मारेसि कछु** मर्देसि कछुक मिलायेसि धूरि— कवि मनियार सिंह कृत **कवित्त**
जै जै रघुनाथ कहि सजल जलद इव गरजि गराज चापि पकरि पछारो है।
जुत्थन समेटि के लँगूरन लपेटि फेरि पटकि चुरी लौं हाड़ चूर कर मारो है॥
'यार' कहै केते मारे कहर चपेटन ते कोटिन के उदर नखाग्रन बिदारो है।
धरनि शिलानि धरि परिघ से चापि चापि बैरी दल दालि से पिठी लौं पीस डारो है॥

* **मेघनाद—इस का** जीवन चरित्र बालकाण्ड की विनायकी टीका में मिलेगा।

× मारेसि जनि सुत बाँधेसि ताही............... हृदय राम कवि **कृत हनुमन्नाटक से**
कवित्त—कौन कपि आयो जिन ऊधम मचायो ऐसो जाहि मेघनाद जनि मारो बाँधि लाइयो।
काके कहे कीनो उतपात यहि बूझौं बात ताते एक बार वाहि मोहि दिखराइयो॥
और जो कदाच काहू देवता का हाथ छल तौ तो ताहि नीके ब्रह्मफांस सो फसाइयो।
मार्‌यो जिन अच्छ यह कौन बली होय तासों सावधान है कै बेटा जीते घर आइयो॥

चौ०—चला इन्द्रजित अतुलित योधा । बंधु वधनि सुनि उपजा क्रोधा ॥
कपि देखा दारुण भट आवा । कटकटाइ गर्जा अरु धावा ॥

अर्थ—बड़ा भारी योधा इन्द्रजीत अपने भाई का मारा जाना सुन क्रोधित हुआ और चल खड़ा हुआ ! जब हनुमान् जी ने देखा कि बड़ा भारी योधा आरहा है, तौ वे किचकिचा कर बड़ी गर्जना करते हुए उस की तरफ झपटे ॥

चौ०—अति विशाल तरु एक उपारा । विरथ कीन्ह लंकेश कुमारा ॥
रहे महा भट ताके संगा । गहिगहिकपिमर्देसिनिजअंगा ॥

अर्थ—उन्हीं ने बड़े भारी वृक्ष को उखाड़ लिया और रावण के लड़के इन्द्रजीत को रथ पर से गिरा दिया । और उस के साथ में जो बलवान् योधा थे, उन को हनुमान् जी ने पकड़ पकड़ के अपने शरीर पर मिथिल डाला ॥

चौ०—तिनहिं निपाति ताहि सन बाजा । भिरे युगल मानहुं गजराजा ॥
मुष्टिक मारि चढ़ा तरु जाई । ताहि एक क्षण मुर्छा आई ॥
उठि बहोरि कीन्हेसि बहु माया । जीत न जाइ प्रभंजन जाया ॥

शब्दार्थ—निपात = मारकर । बाजा = भिड़पड़ा ।

अर्थ—इन को मार कर वह फिर इन्द्रजीत से जा जुटा और दोनों इस प्रकार से जुट पड़े जैसे दो श्रेष्ठ हाथी जुटजायँ । उसे एक घूंसा हन कर पेड़ पर जा चढ़े मेघनाद को क्षण भर के लिये मूर्च्छा आगई । फिर भी चैतन्य होकर उस ने नाना भांति की माया फैलाई तौभी वायुपूत हनुमान् पराजित न होसके ॥

दोहा—ब्रह्मअस्त्र तेहि साधयउ, कपि मन कीन्ह विचार ।
जो न ‡ब्रह्मशर मानऊँ, महिमा मिटै अपार ॥ १६ ॥

‡ जो न ब्रह्मशर मानऊँ, महिमा मिटै अपार—इस में यह शंका हो सक्ती है कि हनुमान् जी ने ऐसा विचार क्यों किया कि "जो न ब्रह्मशर मानऊँ" इत्यादि । क्या कोई कभी ब्रह्मास्त्र से अपनी इच्छानुसार रक्षित रह सक्ता है ? उस का समाधान यह है कि हनुमान् जी को ब्रह्मा का वरदान था कि मेरा ब्रह्म अस्त्र तुम को बाधा न कर सकेगा इसहेतु महावीर ही को यह अधिकार था कि वे चाहते तो वरदान के बल से उसे न मानते परन्तु उन्हीं ने रामचन्द्र जी के कार्य सिद्ध हेतु अपने को बँधा कर ब्रह्म अस्त्र की महिमा भी रक्खी और उस से छूट भी भागे जैसा वाल्मीकीय रामायण में लिखा है ॥

श्लोक—ततः स्वायंभुवैर्मंत्रै ब्रह्मास्त्रं चाभि मंत्रितम् ।
हनूमांश्चिंतयामास वरदानं पितामहात् ॥

अर्थात्

अर्थ — फिर ज्यों हीं इंद्रजीत ने ब्रह्मअस्त्र निकाला त्योंहीं हनुमान् जी ने मन में विचारा कि जो मैं ब्रह्मअस्त्र को नहीं मानता तो उस का बड़ा महत्व नष्ट हो जायगा ॥

चौ०—ब्रह्मबाण तेहि कपि कहँ मारा । परतिहुं बार कटक संहारा ॥
तेहि जाना कपि मुर्च्छित भयऊ । नागपास बाँधेसि लै गयऊ ॥

अर्थ — मेघनाद ने ब्रह्म अस्त्र चलाया, उस की चोट से गिरते २ हनुमान् जी ने बहुत सी सेना मार डाली। जब उस ने जान लिया कि महावीर को मूर्च्छा आ गई तब तो वह उन्हें नाग फाँस में बांध कर ले गया ॥

चौ०—जासु नाम जपि सुनहु भवानी । भव बंधन काटहिं नर ज्ञानी ॥
तासु दूत बंधन तर आवा । प्रभु कारज लगि आपु बँधावा ॥

अर्थ — महादेव जी कहते हैं हे पार्वती ! सुनो, जिसका नाम लेकर ज्ञानवान् मनुष्य संसार के फंदे से छूट जाते हैं। उन का दूत बांधा गया, सो स्वामी के कार्य के हेतु उन्होंने अपने को बन्धन में डाला ॥

चौ०—कपि बंधन सुनि निशिचर धाये । कौतुक लागि सभा लै आये ॥
दशमुख सभा दीख कपि जाई । कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई ॥

अर्थ — "बन्दर पकड़ लिया गया" यह खबर सुनते ही राक्षस गण दौड़ पड़े और खिलवाड़ करने के हेतु उसे (रावण की) सभा में ले गये। हनुमान् जी ने वहां पहुंचते ही रावण की सभा देखी, उस की श्रेष्ठता का वर्णन नहीं किया जाता ॥

चौ०—करजोरे सुर दिशिप विनीता । भृकुटि विलोकहिं सकल सभीता ॥
देखि प्रताप न कपि उर शंका । जिमि अहिगण महँ गरुड़ अशंका ॥

शब्दार्थ—दिशिप (दिशि = दिशा + पा = रक्षक) = दिशाओं के रक्षक दिग्पाल ॥

अर्थ — देवता और दिग्पाल नम्रभाव से हाथ जोड़े खड़े थे और सब के सब डरते हुए उसकी दृष्टि की ओर देख रहे थे। इस प्रकार के वैभव को देखने पर भी हनुमान् जी के जी में कुछ डर न था, जिस प्रकार सर्पों के समूह में गरुड़ निधड़क चला जाता है ॥

अर्थात् तब ब्रह्ममंत्रों से मंत्रित जो अस्त्र चलाया गया था, उस के सम्बन्ध में हनुमान् जी को ब्रह्मदेव के वरदान का स्मरण आया (कि तुम्हें हमारा ब्रह्मास्त्र न व्यापेगा परन्तु उन्हों ने उस अस्त्र से अपने को बँधा कर उस की मर्याद रख ली) ॥

दोहा—कपिहि बिलोक्यो दशवदन, बिहँसा कहि दुर्बाद ।
सुतबध सुरति जु कीन्ह पुनि, उपजा हृदय विषाद ॥ २० ॥

अर्थ—हनुमान् जी को देखते ही रावण कुवचन कह कर हँस उठा परंतु इतने में ज्यों हीं लड़के की मृत्यु की याद आई तो (उस के) हृदय में बड़ा दुःख हुआ ॥

चौ०—‡कहलंकेश कवन तैं कीशा । केहि के बल घालेसि बन खीशा ॥
कीधौं श्रवण सुनेसि नहिं मोही । देखउँ अति अशंक शठ तोही ॥

अर्थ—रावण कहने लगा तू कौन बन्दर है और किस के भरोसे तू ने बगीचे को उजाड़ डाला । क्या तू ने मेरा नाम कानों से नहीं सुना ? रे मूर्ख ! मैं तुझ को बड़ा निडर देखता हूं ॥

चौ०—मारेसि निशिचर केहि अपराधा । कहु शठ तोहि न प्राणकी बाधा ॥
सुन रावण ब्रह्मांड निकाया । पाइ जासु बल बिरचित माया ॥

अर्थ—तू ने किस अपराध के कारण राक्षसों को मारडाला, रे मूर्ख ! कहो तो सही क्या तुझे अपने प्राण का भय नहीं है ? (हनुमान् जी बोले) हे रावण ! सुन जिस की प्रेरणा से माया ब्रह्मांडों के समूहों को बनाती है ॥

चौ०—+जाके बल बिरंचि हरि ईशा । पालत हरत सृजत दशशीशा ॥
जा बल शीश धरे सहसानन । अंडकोश समेत गिरि कानन ॥

---

‡ कह लंकेश कवन तैं कीसा...रावण और हनुमान् के प्रश्नोत्तर रामचंद्रिका के अनुसार—

सवैया—रे कपि कौन तू अक्ष को घातक ? दूत बली रघुनंदन जी को ।
को रघुनंदन ? रे त्रिशिरा खर दूषन दूषन भूषन भू को ॥
सागर कैसे तरो ? जैसे गोपद, काज कहा ? सिय चोरहि देखो ।
कैसे बँधायो ? जो सुंदरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो ॥

+जाके बल बिरंचि हरि ईशा । पालत हरत सृजत दशशीशा ॥

जैसा कि ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के ६ठे अध्याय में लिखा है—

श्लोक—भक्त्याधीनोहि भगवान्सर्व सिद्धोहि निष्कलः ।
ते यस्य च कला पुंसो ब्रह्मा विष्णु महेश्वराः ॥ ६८ ॥

अर्थात् सर्वसिद्धि सम्पन्न और नित्य पूर्ण भगवान् भक्ति के आधीन हैं और ब्रह्मा विष्णु महेश उस आदि पुरुष के अंशमात्र हैं ॥

अर्थ—हे रावण! जिसके बल से ब्रह्मा, विष्णु और महेश क्रमानुसार संसार को बनाते, पालते और मिटाते हैं और जिसकी शक्ति से शेषनाग जी इस पृथ्वी को जंगल और पर्वतों समेत धारण किये हुए हैं ॥

चौ०—धरे जो बिबिध देह सुर त्राता। तुम से शठन सिखावन दाता ॥
हर को दंड कठिन जेहि भंजा। तोहि समेत नृपदल मद गंजा ॥
खर दूषण त्रिशिरा अरु वाली। वधे सकल अतुलित वलशाली ॥

अर्थ—देवताओं की रक्षा करने वाले परमेश्वर जो अनेक अवतार धारण करते हैं और जो तुम्हारे सरीखे दुष्टों को दण्ड देने वाले हैं। जिन्हों ने तुम समेत राजाओं की सभा का मान भंग कर महादेव जी के कठोर धनुष को तोड़ा ॥

अर्थ दूसरा—जिन्हों ने शिव जी के ऐसे कठोर धनुष को तोड़ा कि जिस धनुष ने तुम समेत सम्पूर्ण राज समाजियों के गर्व को तोड़ा था और जिन्हों ने खरदूषण त्रिशिरा और वालि आदि बड़े बलवान् योधाओं को मार डाला ॥

दोहा—जाके बल लवलेश ते, जितेउ चराचर झारि।
तासु दूत हौं जाहि की, ‡हरि आनेहु प्रिय नारि॥ २१ ॥

अर्थ—जिसके अंशमात्र बल से तू ने चर और अचर सब प्रकार के जीवों को पराजित किया है, और जिसकी प्यारी स्त्री को तू चुरा लाया है उसी का दूत मैं हूं ॥

सूचना—जो रावण ने हनुमान् जी से कहा था कि तू कौन है और किस की कुमक में आकर तू ने यह उपद्रव मचाया है उस के उत्तर में यह सब ऊपर का कथन है कि ऐसे प्रताप शाली परमात्मा जो अवतार धारण कर पृथ्वी पर आये हैं उन्हीं के बल से मैं ने यह काम किया। कारण उन्हीं का मैं दूत हूं ॥

---

‡ हरि आनेहु प्रिय नारि—कवि वर मनियार सिंह कृत कविता—

कह्यो कपि कोपि जाकी तिय तैं चुराई बैठि सूने भौन भिक्षुक ह्वै ठीकरा ही हाथ लै ।
ताको अनुचर हौं मैं नंदन प्रभञ्जन को कपिराज मंत्री मुख्य सुनि गुनि गाथ लै ॥
'यार' कहै पूछन पठायो कोशलाधिराज तो भले के काज में न आयो काहू साथ लै ।
कालवश ह्वै के खल गालना बजाय कहूं सीता लै मिलैगो कै मिलैगो दशमाथ लै ॥

चौ०-जानौं मैं तुम्हारि प्रभुताई । सहस * बाहु सन परी लराई ॥
समर वालि सन ‡ कर यश पावा । सुनि कपि वचन विहँसि बहलावा ॥

अर्थ—मैं तुम्हारी मनसाई जानता हूं जब कि तुम्हारा युद्ध सहसबाहु से हुआ । उसी प्रकार बालि के साथ लड़कर भी तुम ने बड़ी कीर्त्ति पाई (यहां पर यह अभिप्राय है कि तुम सहसबाहु से हार गये और बालि की कांख में दबे रहे) । इन बातों को सुन रावण ने हँस के टाल दिया ॥

चौ०-खायउँ फल मोहि लागी भूखा । कपि स्वभावते तोरेउँ रूखा
सब के देह परम प्रिय स्वामी । मारहिं मोहिं कुमारग गामी

अर्थ—मुझे भूख लगी थी इसहेतु मैंने फल खाए, और अपनी बानरी प्रकृति के कारण कुछ वृक्ष भी तोड़ डाले । हे दैत्यराज ! अपना शरीर तो सभी को प्यारा होता है, सो कुमार्गी राक्षस मुझे मारने लगे ॥

चौ०-जिन्ह मोहि मारा तिन्ह मैं मारा । तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारा
मोहि न कछु बाँधे कर लाजा । कीन्ह चहौं निज प्रभु कर काजा ॥

अर्थ—जिनने मुझ को मारा उन्हीं को मैंने मारा इतने पर भी तुम्हारा लड़का मुझे बाँध लाया । मुझे अपने बांधे जाने का कुछ विचार नहीं है, कारण मैं तो अपने स्वामी का काम करना चाहता हूं ॥

---

* सहस बाहु सन परी लराई—सहसबाहु का जीवन चरित्र अयोध्याकांड श्री विनायकी टीका की टि० पृ० ३३९ में देखो । एकबार रावण देश देश के राजाओं से लड़ता फिरता माहिष्मती नगरी के बड़े पराक्रमी सहसबाहु नाम के राजा से जा जुटा सहसबाहु ने सहज ही में पकड़ कर उसे अपने नगर के एक स्थान में क़ैद कर रक्खा । कई दिनों के पश्चात् उस के गिड़गिड़ाने पर छोड़ दिया । सारांश यह कि हनुमान् जी व्यंग से कहते हैं कि तुम ने सहसबाहु से खूब लड़ाई की अर्थात् उन से अच्छी तरह हार गये ॥

‡ समर वालि सन कर यश पावा— देखो बालि का जीवन चरित्र श्रीविनायकी टीका किष्किन्धा कांड टि० पृ० २१ —

और भी देखो स्तुति व्याज निन्दा के विषय कवि लछीराम कृत सवैया—

सवैया—नाख्यो न लक्खन की धनु रेखैं विमान की वाय लौं वेग करी है ।
गीध जटायु सो जंग रच्यो फिरि जानि जरापन लाज धरी है ॥
बालि के फन्द सों फाँदि बच्यो 'लछिराम' कथा को कहै सिगरी है ।
वीर को रावन रावरे सो बन में जिन राम की बाम हरी है ॥

चौ०—विनती*करहुँ जोरि कर रावन। सुनहुँ मान तजिमोर सिखावन॥
देखहु तुम निजकुलहि विचारी। भ्रम तजिभजहु भक्तिभय हारी

अर्थ—हे रावण! मैं हाथ जोड़ तुम से विनती करता हूं तुम अहंकार को छोड़ मेरी सीख मानो। तुम अपने कुल का विचार तो करो (कि तुम पुलस्त्य मुनि के नाती और विश्वश्रवा ऋषि के बेटे हो) और भूल को छोड़ भक्तों के डर दूर करने वाले श्री रामचन्द्र जी का भजन करो॥

चौ०—जाके डर अति काल डराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बैर कबहुँ नहिं कीजे। मोरे कहे जानकी दीजै॥

अर्थ—(देखो)! महाकाल जो देवता, राक्षस और सम्पूर्ण चलने वाले तथास्थिर जीवों का नाश करने वाला है वह भी जिसके डर से भयभीत रहता है। ऐसे प्रभु से कभी बैर न करना चाहिये, मैं कहता हूं कि तुम जानकी को देदो॥

दो०—प्रणतपाल रघुवंशमणि, करुणासिंधु खरारि।
गयेशरण प्रभु राखि हैं, तव अपराध बिसारि॥२२॥

अर्थ—रघुवंशियों में श्रेष्ठ शरणागत रक्षक दयासागर खर (राक्षस) के मारने वाले श्री रामचन्द्र जी के शरण में जो तुम जाओगे तो वे तुम्हारे अपराध क्षमा कर तुम्हारी रक्षा करैंगे॥

चौ०—रामचरणपंकज उर धरहू। लंका अचल राज तुम करहू॥
ऋषि पुलस्त्य यश विमल मयंका। तेहि कुल महँ जनि होसि कलंका

अर्थ—रामचन्द्र जी के कमल स्वरूपी चरणों को हृदय में धारण करो और लंका में अटल राज्य किये जाव। अरे तुम पुलस्त्य ऋषि (अपने आजा) के

---

* विनती करहुँ जोरि कर रावन—इस का अर्थ कोई २ लोग ऐसा करते हैं कि 'जोरि कर, अर्थात् जबरई से 'ती विन करौं' अर्थात् तुझे स्त्री विहीन कर दूँगा। यह अर्थ लोग इस अभिप्राय से करते हैं कि हनुमान् जी रावण से विनती क्यों करते यह तो रामदूत थे। परन्तु यह ठीक नहीं जँचता क्योंकि एक बड़े प्रभावशाली माँडलिक रावण सरीखे राजा को शिक्षा देना चतुराई और नम्रता के साथ ही उचित था॥

निर्मल कीर्त्तिरूप चन्द्रमा में कलङ्क मत बन जाव (अर्थात् पुलस्त्य ऋषि कीर्त्तिवान हैं और तुम उनके नाती ऐसे लम्पट चोर हो) ॥

चौ०—राम† नामबिनगिरा न सोहा। देखु विचारत्यागि मद मोहा ॥
सब भूषण भूषित वर नारी । बसन हीन नहिं सोह सुरारी ॥

अर्थ—अहंकार और ममता त्याग विचार कर देखो कि, रामचन्द जी के नाम बिना वाणी शोभा नहीं पाती । हे देवशत्रु ! यदि सुन्दर स्त्री सब अलंकार धारण किये हो, तौ भी वह बिना कपड़ों के शोभा नहीं पाती ॥

चौ०—राम‡ विमुख संपति प्रभुताई । जाइ रही पाई बिनु पाई ॥

पहिला अर्थ—श्री रामचन्द्र से विमुख होने के कारण तुम्हारा धन और ऐश्वर्य जो तुम ने आज तक प्राप्त किये हैं या जिन्हें तुम प्राप्त करने वाले हो वे सब 'जाइ रही' अर्थात् जाते रहेंगे ॥

दूसरा अर्थ—यदि तुम रामचन्द्र जी से विमुख रहे तो तुम्हारा धन और ऐश्वर्य 'पाई बिन पाई' याने पांव वाली और बे पांव वाली अर्थात् चल और अचल ये सब नाश को प्राप्त होवेंगे ॥

तीसरा अर्थ—रामचन्द्र जी से बैर करने के कारण सम्पत्ति जाती रहेगी, अधिकार नष्ट होगा और तुम वह बात पाओगे जो तुम ने अभी तक नहीं पाई अर्थात् अपयश क्लेश आदि ॥

सजल मूल जिन्ह सरितिन्ह नाहीं ।बरषि गये पुनि तबहिं सुखाहीं॥

अर्थ—जिस प्रकार जिन नदियों के निकास में जल स्थान नहीं है, वे मेह बरसने के बाद तुरन्त ही सूख जाती हैं ॥

---

† राम नाम बिनु गिरा न सोहा—

कवित्त—कोऊ बनावत ऊँचे अटा घनघोर घटा लगे तम्बू कनातैं ।
तामस के इतमाम रचे बहु भूषण भौन जमा की समातैं ॥
'बन्दि' मृषा मन को यह ख्याल रचे जगजाल घने उतपातैं ।
एक रकार मकार बिना धिरकार सबै दुनियाय की बातैं ॥

‡ राम विमुख संपति प्रभुताई

सवैया—झूमत द्वार मतंग अनेक जँजीर जरे मद अम्बु चुचाते ।
ताते तुरंग मनोगति तैं अति पौन के गौन हूं तैं बढ़ि जाते ॥
भीतर चन्द्रमुखी अवलोकति बाहिर भूप भरे न समाते ।
एते भये तौ कहा 'तुलसी' जो पै जानकी नाथ के रङ्ग न राते ॥

चौ०—सुनु दशकंठ कहौं प्रणरोपी । राम विमुख त्राता नहिं कोपी ॥
शंकर सहस विष्णु अज तोही । सकहिं न राखि राम कर द्रोही ॥

अर्थ—हे दशशीस! मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूं कि रामचन्द्र जी से विमुख होने पर कोई भी रक्षा करने वाला नहीं होता । तुझ रामद्रोही को हज़ारों शिव विष्णु और ब्रह्मा भी नहीं बचा सक्के ॥

दो०—मोह ‡ मूल बहु शूल प्रद, त्यागहु तुम अभिमान ।
भजहु राम रघुनायकहिं, कृपा सिंधु भगवान ॥२३॥

अर्थ—तुम ममता के आदि कारण बहुत दुःखों के देनेवाले अभिमान को त्यागो और दयासागर षडैश्वर्यशाली रघुकुल नायक श्री रामचन्द्र जी का भजन करो ॥

चौ०—यद्यपि कह कपि अति हितवानी । भक्ति विवेकविरतिनयसानी ॥
बोला विहँसि अधम अभिमानी । मिला हमहिंकपि गुरु बड़ज्ञानी ॥
मृत्यु निकट आई खल तोहीं । लागेसि अधमसिखावन मोहीं ॥

अर्थ—यद्यपि हनुमान् जी ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीति से भरे हुए उत्तम सिखापन के शब्द कहे थे । तौ भी वह नीच घमण्डी रावण हँसकर कहने लगा, अरे यह बन्दर तो मुझे बड़ा ज्ञानी गुरु मिल गया है । रे दुष्ट ! तेरी मौत नुलानी है, जब तौ रे नीच तू मुझे सिखाने को तैयार हुआ ॥

---

‡ मोहमूल बहु शूल प्रद त्यागहु तुम अभिमान———जैसा कि अध्यात्म रामायण सुन्दर काण्ड के चौथे सर्ग में लिखा है

श्लोक—विष्णोर्हि भक्तिः सुविशोधनं धियस्ततो भवेज्ज्ञान मती वनिर्मलम ।
विशुद्ध तत्वानु भवो भवेत्ततः सम्यग्विदित्वा परमं पदं व्रजेत् ॥ २२
अतो भजस्वाद्य हरिं रमापतिं रामं पुराणं प्रकृतेः परं विभुम् ।
विसृज्य मौर्ख्यं हृदि शत्रुभावनां भजस्व रामं शरणागतप्रियम् ॥ २३

अर्थात् विष्णु जी की भक्ति चित्त के शोधन करने का उत्तम उपाय है उसी भक्ति से बहुत ही निर्मल ज्ञान होता है । इस ज्ञान से फिर आत्म साक्षात्कार होता है फिर आत्म रूप को जान (जीव) परमपद को प्राप्त होता है अर्थात् ब्रह्मरूप हो जाता है ।।२२॥

इस हेतु तुम लक्ष्मी के पति हरि रूप, पुराण पुरुष, माया से परे और व्यापक श्री रामचन्द्र जी का भजन करो । मूर्खता तथा हृदय के शत्रुभाव को छोड़कर ऐसे रामचन्द्रजी का भजन करो जिन्हें शरणागत परम प्यारे हैं ॥२३॥

चौ०-उलटा होइ कहा हनुमाना। मति*भ्रम तोरि प्रकट मैं जाना॥
सुनि कपि वचन बहुत खिसियाना। वेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना॥

अर्थ—हनुमान् जी कहने लगे इसका उलटा होगा (अर्थात् तुम्हारी मृत्यु निकट आई है) कारण मैंने जान लिया कि तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो गई। हनुमान् जी के वचन सुन रावण बहुत ही क्रोधित हुआ और (कह उठा कि) इस मूर्ख को मार क्यों नहीं डालते ?

चौ०-सुनत निशाचर मारण धाये। सचिवन्ह सहित विभीषण आये॥
नाइ शीस करि विनय बहूता। नीति‡विरोध न मारिय दूता॥

अर्थ—सुनते ही राक्षस मारने को दौड़े, इतने ही में मंत्रियों समेत विभीषण आ पहुंचे। उन्हों ने शीस नवाकर बहुत विनती की कि दूत को न मारना चाहिये कारण यह बात न्याय के विरुद्ध है॥

चौ०-आन दंड कछु करिय गुसाईं। सबही कहा मंत्र भल भाई॥
सुनत विहँसि बोला दशकंधर। अंग भंग करि पठवहु बंदर॥

अर्थ—हे स्वामी ! इसे कोई दूसरा दण्ड दीजिये (प्राणदंड नहीं) सब लोग भी बोल उठे कि हे भाई। यह सम्मति अच्छी है। यह सुन रावण कहने लगा कि बन्दर को अपङ्ग कर लौटा दो॥

दो०-कपि कर ममता पूंछ पर, सबहिं कहा समुझाइ।
तेल बोरि पट बांधि पुनि, पावक देहु लगाइ॥२४॥

---

* मति भ्रम तोरि प्रकट मैं जाना......जैसा कहा है हितोपदेश में

श्लोक—दीपनिर्वाण गंधंच सुहृद्वाक्यमरुंधतीम्
नजिघ्रंति न शृण्वंति, न पश्यंति गतायुषः॥

अर्थात् तुरंत ही के, बुझे हुए दीपक की गंध, हित चाहने वालों के वचन और अरुंधती तारा को क्रमानुसार मरन हार प्राणी न सूंघसक्के, न सुनते और न देखते हैं

‡ नीति विरोध न मारिय दूता—जैसा कि वाल्मीकीय रामायण में लिखा है

श्लोक—वैरूप्य मंगेषु कशाभि घातो मौंड्यं तथा लक्षण सन्निपातः
एतान्हि दूते प्रवदंति दंडान्वधस्तु दूतस्य नतः श्रुतोस्ति

अर्थात् अङ्ग भंग करना, चाबुक से मारना, शिर मुंडवा देना और दाग़ देना ही दंड दूतों के लिये कहे गये हैं, दूत का बध हमारे सुनने में नहीं आया।

अर्थ—और सब राक्षसों से समझाकर यों कहने लगा कि बन्दर की प्रीति पूँछ पर रहती है, सो उस में कपड़े लपेट, तेल में डुबा आग लगा दो ॥

चौ०-पूंछ हीन बंदर जब जाइहि। तब शठ निज नाथहिं लै आइहि॥
जिन कर कीन्हेसि अमित बड़ाई। देखौं मैं तिनकर प्रभुताई॥

अर्थ—बंड पुच्छ बन्दर जब जावेगा, तब वह अपने स्वामी को लिवा लावेगा। जिन की इस ने बहुत बड़ाई की है मैं उन की प्रभुताई को देखना चाहता हूं॥

चौ०-वचनसुनतकपिमनमुसुकाना। भइसहायशारद मैंजाना॥
यातुधान सुनिरावणबचना। लागेरचनमूढ़सोइरचना॥

अर्थ—रावण के वचन सुन हनुमान् जी मन में प्रसन्न हो कहने लगे, मैंने जान लिया कि सरस्वती जी ने सहायता की (अर्थात् रावण के द्वारा वही शब्द कहलवाये जिन से मेरी इच्छा पूर्ण होगी सो यों कि लंका जलाने का अवसर सहज ही में हाथ लगेगा) मूर्ख राक्षसगण रावण के वचन सुनकर वही तैयारी करने लगे ॥

चौ०—रहा न नगर बसन घृततेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥
कौतुक कहँ आए पुरवासी। मारहिं चरण करहिं बहुहाँसी॥

अर्थ—हनुमान् जी ने ऐसी खिलवाड़ की कि पूँछ बढ़ती ही गई, सम्पूर्ण नगर के कपड़े घी और तेल सब खर्च हो गये। तमाशा देखने को नगर निवासी भी जा जमे, जो लातें मार मार कर हँसी करने लगे॥

चौ०-*बाजहिं ढोल देहिँ सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ पजारी॥
पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघु रूप तुरंता॥
†निबुकि चढ़ेउ पुनि कनक अटारी। भईं सभीत निशाचर नारी॥

---

* बाजहि ढोल देहि सब तारी। नगर फेरि पुनि पूंछ पजारी कवित्त रामायण से
कवित्त बसन बटोरि बोरि बोरि तेल तमीचर खोरि खोरि धाइ आइ बांधत लँगूर हैं।
तैसो कपि कौतुकी डरात ढीलो गात कै कै लात के अघात सहै जी में कहै कूर हैं॥
बाल किलकारी कै कै तारी दै दै गारी देत पाछे लागे बाजत निशान ढोल तूर हैं।
बालधी बढ़न लागी ठौर ठौर दीन्हीं आगी विन्ध की दवारि कैधों कोटि शतसूर हैं॥

† निबुकि चढ़ेउ पुनि कनक अटारी—कवित्त रामायण से
कवित्त—लाइ लाइ आगि भागे बाल जात जहां तहां लघु ह्वै निबुक गिरिमेरु ते विशाल भो।
कौतुकी कपीश कूदि कनक कँगूरा चढ्यो रावण भवन चढ़ि ठाढ़ो तेहि काल भो॥
'तुलसी' विराज्यो व्योम बालधी पसारि भारि देखे हहरात भट काल सों कराल भो।
तेज को निधान मानो कोटिक कृशानु भानु नख विकराल मुख तैसो रिस लाल भो॥

शब्दार्थ — निबुकि = बंधनों से निसट कर ॥

अर्थ — (वे) ढोल बजाते और तालियां पीटते थे, इस प्रकार (हनुमान् जी को) नगर के चारोंओर घुमाकर पूँछ में आग लगा दी । हनुमान् जी ने अग्नि प्रज्वलित देख, झटपट छोटा रूपधारण कर लिया । (जिस में पूँछ न जले) और फिर (वे) बंधनों से निसट कर सुनहरी अटारी पर जा चढ़े, राक्षसों की स्त्रियां भयभीत हो गईं ॥

दो०—हरि प्रेरित तेहि अवसरहि, बहे पवन *उञ्चास ।
‡अट्टहास कर गर्जयउ, कपि बढ़ि लागि अकास ॥२५॥

अर्थ — ईश्वर की प्रेरणा से उस समय उञ्चासों वायु चल उठीं और हनुमान् जी भी खिल खिलाकर हँसे, गर्जे और अपने शरीर को बढ़ाकर मानों आकाश में जा लगे ॥

चौ०—देहि विशाल परम हरुआई । मंदिर ते मंदिर चढ़ि जाई ॥
जरइ नगर भे लोग विहाला । लपट झपट बहु कोटि कराला ॥

अर्थ — शरीर तौ भारी था परन्तु हलकापन इतना था कि एक महल से दूसरे महल पर उछल जाते थे । लंकापुरी जल रही थी उस में से सपाटे की भयङ्कर बहुत सी लपटें उठ रहीं थीं इस से पुरवासी बहुत व्याकुल हुए ॥

चौ०—तात† मात सब करहिं पुकारा । यहि अवसर को हमहिं उबारा ॥
हम जो कहा यह कपि नहिँ होई । वानररूप धरे सुर कोई ॥

---

* उञ्चास पवन—देखो आरण्यकांड की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० २८ पंक्ति, २७ और इस के नीचे ४२ लकीरों का क्षेपक पुरौनी में मिलेगा ॥

‡ अट्टहास करि गर्जजउ, कपि बढ़ि लाग अकास —कवित्त रामायण से

कवित्त-गाजो कपि गाज ज्यों विराज्यो ज्वाला जालयुत भाज्यो वीर धीर अकुलाय उठ्यो रावनो ।
धावो धावो धरो सुन धाये यातुधान धारी वारि धारा उलदै जलद ज्यौन सावनो ॥
लपट झपट झहराने हहराने वात भहराने भट परेउ प्रबल परावनो ।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो ॥

† तात मात सब करहिं पुकारा

कवित्त-लागि लागि आगि भागि चले जहां तहां धीय को न माय बाप पूत न संभारहीं
छूटे बार बसन उघारे धूम धुंद अन्ध कहैं बारे बूढ़े बारि बारि बार बार हीं ॥
हय हिहिनात भागे जात घहरात गज भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं ।
नाम लै चिलात बिललात अकुलात अति तात तात तोसियत झौंसियत झारहीं ।

अर्थ—सब के सब चिल्लाते थे कि बप्पा रे! मैया री! इस समय पर हमें कौन बचावे । हम जो कहते थे कि यह बन्दर नहीं है यह तो कोई देवता है, जिस ने बन्दर का रूप धारण कर लिया है ॥

चौ०—साधु अवज्ञा कर फल ऐसा । जरइ नगर अनाथ कर जैसा ॥
*जारा नगर निमिष इक माहीं । एक विभीषण कर गृह नाहीं ॥

अर्थ—सन्तों के अनादर करने का ऐसा ही फल है तभी तौ यह नगर इस प्रकार जल रहा है मानो स्वामी हीन हो । क्षण भर में सम्पूर्ण नगर को जला दिया, केवल विभीषण का महल बचा दिया ॥

चौ०—†ताकर दूत अनल जेइ सिरजा । जरा न सो तेहि कारण गिरिजा ॥
उलटि पलटि लंका सब जारी । कूदि परा पुनि सिंधु मँझारी ॥

---

* जारा नगर निमिष इक माहीं । एक विभीषण कर गृह नाहीं—छप्पय रामायण से

छप्पय—ज्वालावंतकराल कीश चढ़ि कनक अटारी ।
नगर शोर चहुँ ओर जरन लागे नर नारी ॥
वात जात बल पुंज हांक सुनि दनुज सकाने ।
बाल वृद्ध संपति विहाय सब जरत पराने ॥
जरा लंक बंधु एक घर विभीषण के हरि जापना ।
कृपा करहु श्री रामचन्द्र मम हरहु शोक संतापना ॥

† ताकर दूत अनल जेइ सिरजा । जरा न सो तेहि कारण गिरिजा —

इसका पहिला अर्थ इस आधार से संगति युक्त जँचता है कि इस वाक्य में क्रिया 'जरा' और कर्त्ता 'सो' है इसलिये महावीर अग्नि से पीड़ित नहीं हुए यही सिद्ध होता है और भी अध्यात्म रामायण में स्पष्ट कहा है कि—

श्लोक—यन्नाम संस्मरण धूत समस्त पापा स्तापत्रया नलमपीह तरन्ति सद्यः ।
तस्यैव किं रघुवरस्य विशिष्ट दूतः सन्तप्यते कथ मसौ प्रकृतानलेन ॥

अर्थ-जिन (रामचन्द्रजी) के नाम स्मरणमात्र से संपूर्ण पापों से छुटकारा पाकर प्राणी तीनों प्रकार के तापों से पार हो जाता है (अर्थात् उस प्राणी को किसी प्रकार की दैविक-अग्नि नहीं जला सकी) उन्हीं रामचन्द्र जी के प्रियदूत हनुमान् क्या साधारण अग्नि से जल सक्ते थे! (कदापि नहीं) उनकी पूंछ का एक बाल तक बाँका न हुआ था और भी कबीर की साखी सुनिये—

दो०—जा को राखे साइयाँ, मारि न सकि है कोइ ।
बाल न बांका करि सकै, जो जग बैरी होइ ॥

अर्थ-(पहिला पहिली लकीर का)— महादेव जी कहते हैं कि हे पार्वती ! हनुमान् तौ उन्हीं के दूत हैं जिन्हों ने अग्नि को बनाया (फिर भला वह कैसे जल सक्ते थे अर्थात् अग्नि हनुमान् जी को कुछ भी बाधा न पहुंचा सकी) ॥

अर्थ दूसरा—महादेव जी कहते हैं कि हे पार्वती ! सो (विभीषण का महल) इसहेतु नहीं जला कि हनुमान् जी तौ उन्हीं के दूत हैं जिन्हों ने अग्नि को उत्पन्न किया (और विभीषण रामभक्त थे सो हनुमान् जी ने पहिले ही उनकी जांच करली थी) । इधर उधर आगे पीछे घूम कर सब लंका जला दी, फिर समुद्र में कूद पड़े ॥

दो०—पूँछ बुझाई खोइ श्रम, धरि लघुरूप बहोरि ।
जनकसुता के सामुहें, ठाढ़ भयउ कर जोरि ॥ २६ ॥

अर्थ—इस प्रकार पूँछ को बुझाय, थकावट उतार, फिर भी छोटा सा रूप धारण कर हाथ जोड़ कर जानकी जी के सन्मुख जा खड़े हुए ॥

चौ०--मातु मोहि दीजै कछु चीन्हा । जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा ॥
चूड़ामणि उतारि तब दयऊ । हर्ष समेत पवनसुत लयऊ ॥

शब्दार्थ—चूड़ामणि = स्त्रियों की चोटी में पहिनने का गहना ॥

अर्थ—हे माता ! मुझे कुछ निशानी दीजिये जिस प्रकार रामचन्द्र जी ने दी थी । जानकी जी ने अपनी चूड़ामणि दे दी जिस को हनुमान् जी ने प्रसन्नता पूर्वक ले ली ॥

चौ०---कहेउ तात तुम मोर प्रणामा । सब प्रकार प्रभु पूरण कामा ॥
दीनदयाल विरद संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ॥

अर्थ—हे प्यारे ! तुम मेरा प्रणाम कह देना, प्रभु जी तौ सब प्रकार से परिपूर्ण मनोरथ हैं (अर्थात् उन्हें किसी बात की इच्छा नहीं है) । हे दुखियों पर दया करने वाले ! आप अपने प्रण का विचार कीजिये, (अर्थात् दीनों पर दया करना यह आप की टेक है सो उसे यों निवाहिये कि (हे स्वामी ! मेरे भारी दुःख को दूर कीजिये ॥

चौ०—तात शक्रसुत कथा सुनायउ । वाण प्रताप प्रभुहि समुझायउ ॥
मास दिवस महँ नाथ न आये । तौ पुनि मोहि जियत नहिं पाये ।

अर्थ—हे प्यारे ! इन्द्र के लड़के जयन्त की कथा प्रभु से कहियो और उन्हें तिनका के वाण का प्रताप कह सुनाइयो (भाव यह है कि जयन्त

ने जो कौए का रूप धारण कर सीता जी को चोंच मारी थी और रामचन्द्र जी ने तिनके के बाण से उसे परास्त किया था सो गुप्त कथा केवल सीता और रामचन्द्र जी जानते थे वही कथा सीता जी ने हनुमान् जी से पहिचान के लिये कही परन्तु यह कथा पीछे से प्रकट हो गई सो गोसाईं जी आरण्यकांड में लिख ही चुके हैं)। जो परमेश्वर महिने भरमें न आवेंगे तौ वे मुझे जीती न पावेंगे ॥

चौ०—कहु कपि केहि विधि राखौं प्राना। तुमहूं तात कहत अब जाना ॥
तुमहिं देखि शीतल भइ छाती। पुनि मो कहँ सोइ दिन सोइ‡राती ॥

अर्थ—हे हनुमान् ! तुम्हीं बताओ मैं किस प्रकार से प्राण धारण किये रहूं क्योंकि हे प्यारे ! तुम भी तो अब कहते हो कि मैं जाता हूं। तुम्हें देखकर मेरा हृदय शांत हुआ है फिर तो मुझे जैसा दिन वैसी ही रात्रि है (अर्थात् दोनों दुखदाई हैं) ॥

दो०—जनकसुतहि समुझाइ करि, बहु विधि धीरज दीन्ह ।
चरण कमल शिर नाइ कपि, गमन राम पहँ कीन्ह ॥२७॥

अर्थ — हनुमान्जी ने सीता जीको समझा कर अनेक प्रकार से ढांढ़स बँधाया और फिर (वे) उनके कमलस्वरूपी चरणोंपर शिर नवाकर रामचन्द्र जी के पास चले ॥

चौ०—चलत महा धुनि गर्जेउ भारी। गर्भ स्रवेउ सुनि निशिचर नारी ॥
लाँघि सिंधु इहि पारहिं आवा। शब्द किलकिला कपिन सुनावा ॥

शब्दार्थ — किलकिला = प्रसन्नता का बानरी शब्द ॥

अर्थ — चलते समय बड़े भारी शब्द से बहुत ही गर्जना की, जिसे सुन राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिर पड़े। फिर समुद्र को पार कर इस पार आ गये और बानरों को आनन्द ध्वनि सुनाई ॥

चौ०—हर्षे*सब विलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन तब जाना ॥
मुख प्रसन्न तनु तेज विराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा ॥

---

‡ 'सोइ राती' इस के पश्चात् २६ पंक्ति का क्षेपक पुरोनी में मिलेगा ॥

* हर्षे सब विलोकि हनुमाना —

कवित्त— आयो हनुमान प्राण हेतु अङ्क माल देत लेत पग धूरि यक चूमत लँगूर हैं।
एक बूझै बार बार सीय समाचार कहे पवन कुमार भो विगत श्रम शूल हैं ॥
एक भूखे जानि आगे आनि कंद मूल फल एक पूजे बाहुबल मूल तोरि फूल हैं ।
एक कहैं 'तुलसी' सकल सिधि ताके जाके कृपा पाथनाथ सीता नाथ सानुकूल हैं ॥

अर्थ—सब के सब हनुमान् जी को देख प्रसन्न हुए, तब वानरों ने समझ लिया कि हमारा नया जन्म हुआ (भाव यह कि हनुमान् जी को प्रसन्न देख सब को अपने जीने की आशा हो गई क्योंकि अगर सीता जी का पता न लगता तो बन्दरों को अपने मारे जाने का भय था)। चेहरे को प्रसन्नता से और शरीर को तेज से भरा हुआ देख (सब को निश्चय हो गया कि) ये रामचन्द्र जी का काम सिद्ध कर आये ॥

चौ०—मिले सकल अति भये सुखारी। तलफत मीन पाव जनु वारी ॥
चले हर्षि रघुनायक पासा। पूछत कहत नवल इतिहासा ॥

अर्थ—हनुमान् जी से मिलकर सब बन्दर इस प्रकार प्रसन्न हुए जिस प्रकार तलफती हुई मछली पानी पा जावे । वे प्रसन्नता पूर्वक मार्ग में नई वार्त्ता पूछते और कहते हुए रामचन्द्र जी के पास चले ॥

चौ०—तब मधुबन भीतर सब आये। अंगद सम्मत* मधुफल खाये ॥
रखवारे तब बरजन लागे। मुष्टि प्रहार करत सब भागे ॥

अर्थ—तब वे सब (सुग्रीव के) मधुबन नामी बगीचे में आ पहुंचे और अङ्गद की आज्ञा लेकर सब बन्दरों ने मीठे मीठे फल तोड़ खाये । रखवारों ने रोका परन्तु इन्हों ने उन्हें ऐसे घूंसे जमाये कि वे भागे ॥

दो०—जाइ पुकारे सकल ते, बन उजार युवराज ।
सुनि सुग्रीवहिं हर्षि कपि, करि आये प्रभु काज ॥२८॥

अर्थ—रखवारों ने पुकार मचाई कि युवराज ने उपवन को उजाड़ डाला, यह सुनते ही सुग्रीव को बड़ा आनद हुआ क्योंकि वे जान गये कि वानर रामचन्द्र जी का काम सिद्ध कर आये ॥

---

* अंगद सम्मत मधु फल खाये (राम रसायन रामायण से)

चौपई छंद—धाय धाय चहुँ ओर सुवानर जाति महा उतपाती ।
अशन करैं अरु तोरि बहावैं शाख फूल फल पाती ॥
भंजैं तरु गंजैं वर वेलिन मधु पीवैं किलकारैं ।
भरैं द्रोन कर धरैं मत्त ह्वै ढोरि महीतल डारैं ॥
कोऊ चढ़ि द्रुम धरि झकझोरैं कोउ शाख गहि झूमैं ।
कोऊ इक तरु ते दूजे पर उछलि बैठ तेहि दूमैं ॥
कोऊ पुच्छ उठाय सु नाचं कोऊ मुखहि बजावैं ।
कोऊ छंद प्रबंध उचारैं कोऊ हँसैं जु गावैं ॥

चौ०—जो न होत सीता सुधि पाई । मधुबन के फल सकहिं कि खाई ॥
यहि विधि मन बिचार कर राजा । आइ गए कपि सहित समाजा ॥

अर्थ—जो इन्हें सीता जी का पता न लगा होता तो ये मधुवन के फल कैसे खा सकते (अर्थात् प्राण भय के कारण फल खाने की इच्छा किसे होती) राजा सुग्रीव इस प्रकार सोच ही रहे थे कि हनुमान् जी सब बन्दरों समेत आ पहुंचे ॥

चौ०—आइ सबहिं नावा पद शीशा । मिले सबन्हि अति प्रेम कपीशा ॥
पूछीं कुशल कुशल पद देखी । रामकृपा भा काज विशेखी ॥

अर्थ—आते ही सब ने सुग्रीव जी के चरणों पर मस्तक नवाया और व सब से प्रेम पूर्वक मिले । (वानर राज ने) प्रश्न पूछा कि सब लोग कुशल से हो (उत्तर पाया) आपके चरणों के दर्शनों से कुशल हैं, रामचन्द्र जी की कृपा से कार्य अच्छी रीति से सिद्ध हुआ ॥

चौ०—नाथ*काज कीन्हेउ हनुमाना । राखे सकल कपिन्ह कर प्राना ॥
सुनि सुग्रीव बहुरि उठि मिलेऊ । कपिन्ह सहित रघुपति पहँ चलेऊ ॥

अर्थ—हे स्वामी ! हनुमान् जी ने कार्य सिद्ध किया और उन्हीं ने सब बानरों के प्राण बचाये । यह सुन सुग्रीव उठ खड़े हुए और हनुमान् जी से भेंट कर तथा सब को अपने साथ ले रामचन्द्र जी के पास चले ॥

चौ०—राम कपिन्ह जब आवत देखा । किये काज मन हर्ष विशेखा ॥
फटिक शिला बैठे दोउ भाई । परे सकल कपि चरणन जाई ॥

अर्थ—जब रामचन्द्र जी ने बानरों को कार्य सिद्ध होने के कारण हृदय से प्रसन्न चित्त आते देखा । तब दोनों भाई स्फटिक मणि की चट्टान पर आ बैठे वहां सब बंदरों ने उन के चरणों पर शिर नवाया ॥

दो०—प्रीति सहित भेटे सकल, रघुपति करुणापुंज ।
पूछेउ कुशल नाथ अब, कुशल देखि पदकंज ॥२६॥

अर्थ—तब दया सागर श्री रामचंद्र जी सब से प्रेमपूर्वक मिले और उन्हों ने सब से कुशल प्रश्न पूछे, उत्तर पाया हे स्वामी ! आपके कमल स्वरूपी चरणों को देख सब कुशल ही है ॥

---

* नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना— रामरत्नाकर रामायण से—
सोरठा—जेहि लांघ्यो वारीश, ईश रूप है कीश तन ।
कर डार्यो बन खीश, बीस भुजा दश शीश कर ॥

चौ०—जामवंत कह सुन रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम दाया ॥
ताहि सदा शुभ कुशल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न तेहि ऊपर ॥

अर्थ—जामवन्त कहने लगे हे रघुनाथ जी सुनिये, हे प्रभु! आप जिस पर दया करते हैं। उस को सदैव भला और उस की सब काल कुशल है, तथा देवता, मनुष्य और मुनिगण उस पर प्रसन्न रहते हैं ॥

चौ०—सो विजयी विनयी गुण सागर। तासु सुयश तिहुँ लोक उजागर॥
प्रभु की कृपा भयउ सब काजू। जन्म हमार सफल भा आजू ॥

अर्थ—उसी की जीत है, वही नम्र है, वही गुणवान् है और उसी की कीर्त्ति तीनों लोक में प्रसिद्ध है। आप की दया से सब काम सिद्ध हो गया और हम लोगों के जीवन का फल भी आज हमें मिला ॥

चौ०—नाथ पवनसुत कीन्ह जो करणी। सो मुख लाखउ जाइ न बरणी॥
पवन तनय के‡ चरित सुहाये। जामवंत रघुपतिहिं सुनाये ॥

अर्थ—हे प्रभु! हनुमान् ने जो जो कार्य किये हैं, सो अनगिनती मुखों से भी वर्णन नहीं किये जा सक्ते। (इतना कह) जामवान ने हनुमान् के मन भावने चरित्र रामचंद्र जी को कह सुनाये ॥

चौ०—सुनत कृपानिधि मनअति भाये। पुनि हनुमान हरषिहियलाये ॥
कहहु*तात केहिभांति जानकी। रहति करति रक्षा स्वप्राण†की ॥

---

‡ पवन तनय के चरित सुहाये— लाला बलदेव दास कृत विष्णुपदी रामायण में कैसी उत्तम रीति से संक्षिप्त में कहा है—(राग ध्रुपद में)

सुरसा को गर्व गारो सिंहिका को उद्र फारो नाघि के समुद्र खारो लंकिनी पछारो है ॥
मुद्रिका तुरंत डारो जानकी को सोच टारो वाटिका उजारो मारो अच्छ, पुर जारो है ॥
सीय को जबै जोहारो चूड़ामणि सो उतारो चारु चिन्ह ले सिधारो आयेसिन्धु पारो है ॥
जामवंत यों उचारो रामहर्ष को निहारो बोलि बलदेव प्यारो दूत को दुलारो है

* कहहु तात केहि भांति जानकी———

(१) राम रसायन रामायण से—

क०—मेरी प्राण प्यारी तुम निज दग देखी सत्य भाखौ वेगि नेकहू न शंक हिय राखौ वीर ।
कित हैं कहाँ हैं किहि देश किहि भेष माहिं ग्राम नाम ठाम धाम बरणि धरावो धीर ॥
'रसिक विहारी' कही जनक दुलारी काह जीवै किमि बाला कैसे सहत वियोग पीर ।
मेरो दिनरात विरहानल जरावै गात सपदि सिरावौ बरसाय कै सुबैन नीर ॥
(और भी)

अर्थ—दया सागर श्री रामचंद्र जी को (हनुमान् जी के गुणानुवाद) सुनते ही सुहावने लगे, फिर तो उन्हों ने प्रसंनता पूर्वक हनुमान् जी को हृदय से लगा लिया (और पूछा) हे प्यारे! कहो तो सही कि जानकी किस प्रकार रहकर अपने जीव की रक्षा करती हैं ॥

दो०—नाम पाहरु दिवस निशि, ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद यंत्रिका, प्राण जाहिं केहि बाट ॥३०॥

अर्थ—दिन रात 'आप के नाम का जाप' यही चौकीदार है, आप का ध्यान यही मानो किवाड़े हैं और नेत्रों में निज चरण ताले के तुल्य बने रहते हैं फिर प्राण किस मार्ग से जाव । (भाव यह कि आप ही के ध्यान और भजन में वे दिन रात मग्न रहती हैं तो फिर उनके प्राणों को कौन बाधा कर सक्ता है)।

चौ०—चलत*मोहि चूड़ामणि दीन्ही। रघुपति हृदय लाय तेहिलीन्ही॥
नाथ युगल लोचन भरि वारी। वचन कहे कछु जनककुमारी॥

अर्थ—लौटतीवार उन्हों ने मुझे यह चूड़ामणि दी थी, रामचन्द्र जी ने उसे अपने हृदय से लगा लिया। (फिर हनुमान् जी बोले) हे प्रभु! जानकी जी ने दोनों नेत्रों में आंसू भर कर कुछ संदेशा कहा है ॥

---

(२) हनुमन्नाटक से-

सवैया—प्हो हनू कह श्री रघुवीर कछू सुधि है सिय कि छिति माहीं ।
है प्रभु लंक कलंक बिना सु बसै तहँ रावण बाग कि छाहीं ॥
जीवति है? कहि बेई को नाथ, सु क्यों न मरी हम तें बिछुराहीं ।
प्रान बसै पद पंकज में यम आवत है पर पावत नाहीं ॥

* चलत मोहि चूड़ामणि दीन्ही—छप्पय रामायण से -

विरह अनल तनु तप्त आपु हित राखी नैना ।
अब विलंब जनि करहु सिया हे राजिव नैना ॥
शक्र सुअन मृग हेम जानु तव बाण प्रतापा ।
जानु कबँध अरु बालि कहा भये सो शर चापा ॥
सिया विनय चरणन पड़ी चूड़ामणि दिहि आपना ।
कृपा करहु श्री रामचन्द्र मम हरहु शोक संतापना ॥

और इस के आगे १४ लकीरों का जो क्षेपक है वह पुरौनी में दिया है ॥

चौ०—*अनुज समेत गहेहु प्रभु चरणा। दीनबन्धु प्रणतारति हरणा ॥
मन क्रम वचन चरण अनुरागी। ‡केहि अपराध नाथ मोहि त्यागी ॥

अर्थ—लक्ष्मण जी समेत स्वामी जी के चरणों में शिर नवाना, जो प्रभु दीनों पर दया करने वाले और शरणागत के दुःख दूर करने हारे हैं । मनसा, वाचा कर्मणा से मेरा प्रेम आप के चरणों में है, सो हे प्रभु ! किस दोष से आप ने मुझ को त्याग दिया ॥

चौ०—अवगुण एक मोर मैं जाना। बिछुरत प्राण न कीन्ह पयाना ॥
नाथ सो नयनन्ह कर अपराधा। निसरत प्राण करहिं हठि बाधा ॥

अर्थ—मैं जान गई कि मुझ में एक भारी दुर्गुण है सो यह कि आप के वियोग से मेरे प्राण न निकले । सो हे स्वामी । यह नेत्रों का अपराध है जो प्राणों को निकलने नहीं देते, जबरई से रोकते हैं ॥

चौ०—विरह अनल तनुतूल समीरा। स्वास जरै क्षण माहि शरीरा ॥
नयन स्रवैं जल निजहित लागी। जरै न पाव देह विरहागी ॥
†सीता की अति विपति विशाला। बिनहिं कहे भल दीनदयाला ॥

---

* अनुज समेत गहेहु प्रभु चरणा— सीता जी ने लक्ष्मण के चरण छूने को क्यों कहा ?

लक्ष्मण जी के पैर छूने का अभिप्राय यह है कि जो पंचवटी में उन्हें कटु वचन कह कर अपने समीप से बिदा किया था और जिस के कारण यह वियोग दुःख सह रही थीं सो अपराध क्षमा कराने के निमित्त ऐसा कहा कारण उन का पश्चाताप तो हरण समय के वचनों से प्रकट ही है यथा – 'हा लक्ष्मण तुम्हार नहिं दोषा । सो फल पायउँ कीन्हेउ रोषा' (आरण्यकाण्ड)

‡ केहि अपराध नाथ मोहि त्यागी— कदाचित् यह वचन कह कर जैसा कि राम रसायन रामायण में लिखा है –

दोहा—भयो होइ भारी जु पै, मोते कछु अपराध ।
तौ सब ही कीजै क्षमा, प्रभु उर दया अगाध ॥

† सीता की अति विपति विशाला— हृदयराम कवि कृत हनुमन्नाटक से—

कवित्त—दूबरी तो ऐसी देखी सुनो रघुराय जा के आगे दूज शशी की कला तो अति पीन हैं ।
पीरी यहि भांति जाके हरदी कुसुम रंग आँसुन के आगे मेह सावन के हीन हैं ।
विरह के श्वासन के आगे आग ऐसे जैसे महा हिम बोल मुख श्वासन अधीन हैं ।
जनक सुता को एक पतिव्रत शील सुन और देख देख मैं तो वारे पुर तीन हैं ॥

अर्थ — वियोगरूपी अग्नि से रुईरूपी शरीर सांसरूपी वायु के कारण क्षण भर में नष्ट हो जाता परन्तु नेत्र अपने ही स्वार्थ के लिये जल बरसाते रहते हैं। इसहेतु विरहरूपी अग्नि शान्त होकर शरीर को नहीं जला पाती (भाव यह है कि शरीर में वियोग दुःख परिपूर्ण है और नेत्रों से सदैव आंसू बहा करते हैं)। हे दीनों पर दया करने वाले प्रभु ! सीता जी का बड़ा भारी दुःख न कहना ही भला है ॥

तीसरी लकीर का दूसरा अर्थ — हे दीनों पर दया करने वाले ! (मैं ने सीता जी की साधारण विपत्ति तो वर्णन की) उन की बड़ी भारी विपत्ति (रावण आदि से त्रास) का वर्णन न करना ही भला है (कारण उस से आप की बेचैनी बढ़ैगी) ॥

दो०—निमिष निमिष करुणायतन, जाहिं कल्प सम बीति।
वेगि* चलिय प्रभु आनिये, भुज बल खल दल जीति॥३१॥

अर्थ — हे दयासागर रामचन्द्र जी ! उन्हें प्रत्येक क्षण सौ कल्प के तुल्य समझ पड़ता है, सो हे प्रभु ! जल्दी चलकर दुष्टों के समूह को अपने पराक्रम से हरा कर उन्हें जल्दी लिवा लाइये ॥

---

* वेगि चलिय प्रभु आनिये — लाला बलदेव दास कृत विष्णुपदी रामायण से —

लावनी ॥

हनुमन्त कहत भगवन्त बिनय सुनि मेरी। चलि वेगि सिया सुध लेहु करहु जनि देरी ॥टेक॥

मैं जाय आपनी आँख दशा तेहि हेरी । बैठी अशोक तर दुसह शोक से घेरी ॥
दशकंध करत उतपात जबै तब फेरी । चहुँओर करैं भय शोर राक्षसी चेरी ॥
पै समुझावति तिरजटा सखी उन केरी । चलि वेगि सिया सुध लेहु० ॥ १ ॥

यक तो अत्यन्त मृदुगात रही सुकुमारी । पुनि नाथ विरह दुख देत दुष्ट भय भारी ॥
अब भई दूबरी अधिक न जाय निहारी । शिरलटैं जटा परिगईं नयन बहे बारी ॥
निज चरण दिये निज दीठि हृदय गति तेरी । चलि वेगि सिया सुध लेहु० ॥ २ ॥

जो वहां चलन महँ नाथ विलंब लगै हैं । तौ दुसह विरह से जियत न सीतहिं पैहैं ॥
जब सिय नयनन्ह के आँसु उमड़ि बहु ऐहैं । तब बँधि न सकहि फिर सेतुशैल बहि जैहैं ॥
बिन सेतु बँधे किमि तरहिं भालु कपि ढेरी । चलि वेगि सिया सुध लेहु० ॥ ३ ॥

प्रभु जनकसुता तन तूल विरह भइ आगी । नित श्वास पवन चल जोर ज्वाल अति जागी ॥
पै श्रवत नयन दिनरैन सो निजहित लागी । तेहि जरन देत नहिं देह दरश अनुरागी ॥
'बलदेव' कहां लग कहौं विथा बहुतेरी । चलि वेगि सिया सुध लेहु० ॥ ४ ॥

चौ—‡सुनि सीता दुख प्रभु सुखअयना। †भरि आये जल राजिवनयना
वचन काय मन मम गति जाही। सपनेहु विपति कि चाहिय ताही

अर्थ—सुख के स्थान श्री रामचन्द्र जीके कमलस्वरूपी नेत्रों में भी आंसू भर आये जब उन्हों ने सीता जी के संकट को सुना (कारण प्रभु अपने भक्त को दुःखी देख वा सुन के दुःखी हो जाते हैं)। (वे बोले) जिन का प्रेम मनसावाचा कर्मणा से मुझ में लगा है उन्हें दुःख स्वप्न में भी न होना चाहिये ॥

चौ०—कह हनुमान विपति प्रभु सोई। जब तब सुमिरन भजन न होई ॥
*केतिक बात प्रभु यातुधान की। रिपुहि जीत आनिबी जानकी॥

अर्थ—हनुमान् जी बोले, हे प्रभु! विपत्ति तो उसी को होगी जिस से आप का सुमिरन न हो सके (अर्थात् सीता जी तो आप के ध्यान में मग्न रहती हैं उन्हें क्लेश विपत्ति का दुःख कैसे हो सक्ता है)। हे स्वामी! राक्षस की कितनी सी जड़ है, उस शत्रु को जीत कर जानकी जी को लिवा लावैंगे ॥

चौ०—§ सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिंकोउ सुर नर मुनि तनुधारी
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकै मन मोरा ॥

---

‡ सुनि सीता दुख प्रभु सुखअयना—बरवा रामायण से—

सिय वियोग दुख केहि विधि कहउँ बखानि। फूलवान ते मनसिज बेधत आनि ॥
विरह आग उर ऊपर जब अधिकाय। ये अँखियां दोउ बैरिन देहिं बुझाय ॥
शरद चाँदनी सँचरत चहुँ दिशि आनि। विधुहि जोरि कर विनवति कुलगुरु जानि ॥
अब जीवन कै है कपि आश न कोइ। कनगुरिया कै मुँदरी कंकण होइ ॥

† भरि आये जल राजिवनयना — राम रसायन रामायण से—

दो०—सो सुनि रघुवर श्वास लै, हिलकि उससि अकुलाय।
कही हाय मम बल्लभा, अब केहि भांति मिलाय ॥

* केतिक बात प्रभु यातुधान की। रिपुहि जीत आनिबी जानकी—राम स्वयम्बर से—

क०—देखत ही केशरी किशोर कर जोरि दौरि, परि प्रभु पाँयन में बोल्यो यों हीं बैन है।
जनकसुता को देखि आयो वाटिका में बैठी, रावरे प्रताप ही ते देख्यौ खल ऐन है।
चूड़ामणि दै कै कह्यो फटिक शिला की बात, आपही को नाम जपि काटै दिनरैन है।
बानन सो मारिये दशानन को चलि नाथ, सीता दुख एक मुख कहत बनै न है ॥

§ सुनु कपि तोहि समान उपकारी— इस विचार को रसिक विहारी जी यों कहते हैं—

क०—ऐसो ओज सुयश विराजै महि मण्डल में, परम प्रचंड तनु तेज भूरि भान को।
जाकी कल कीरति बखानै राम आप मुख, शेष हू न गाइ सकै ताके गुण गान को ॥
'रसिक विहारी' सुखदायक सदा ही वीर, दूजो जनपाल दानी करुणानिधान को।
दीनन को त्राता मोद मंगल विधाता बड़, ऋद्धिसिद्धि दाता वन्दौं नाम हनुमान को ॥

अर्थ—हे हनुमान् ! सुनो, तुम्हारी नाईं भलाई करने वाला कोई भी प्राणी न देवता, न मनुष्य और न मुनि हैं । मैं तुम्हें क्या बदला दे सक्ता हूं, मेरा मन भी तौ तुम्हारे साम्हने नहीं हो सक्ता है ॥

चौ०--†सुनु कपि तोहि उऋण मैं नाहीं। देखेउँ करि विचार मनमाहीं॥
पुनिपुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलकिअतिगात

अर्थ—हे हनुमान् सुनो, मैं अपने मन से विचार कर चुका हूं कि मैं तुम से उऋण नहीं हूं । देवताओं की रक्षा करने वाले रामचन्द्र जी बारम्बार हनुमान् जी की ओर देखते थे, उन के नेत्रों में आंसू भरे थे और शरीर के रोम खड़े हो आये थे ॥

दो०—सुनिप्रभुवचनविलोकिमुख, हृदय हर्ष हनुमंत ।
चरनन्ह प्रेमाकुल परेउ, त्राहि त्राहि भगवंत ॥ ३२ ॥

अर्थ—हनुमान् जी श्री रामचन्द्र जी के वचन सुन और उन के मुख की ओर देख, प्रेम से व्याकुल हो उन के चरणों पर गिर पड़े और बोले – हे भगवान् ! मेरी रक्षा कीजिये, मेरी रक्षा कीजिये ॥

चौ०--बारबार प्रभु चहत उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥
प्रभुपद पंकज कपि कर शीशा। ❀सुमिर सो दशा मगन गौरीशा॥

---

† सुनु कपि तोहि उऋण मैं नाहीं—रामस्वयम्वर से

क०- बोले हरषाय रघुनाथ बैन बार बार, देइबो को आज तीनौं लोक तोहि थोरा है।
तातें कै विचार मन माँह ठीक योंहीं दियो, उऋण न तो सों सदा एही मन मोरा है॥
प्रभु के वचन सुनि कीश कर जोरि कहै, काज तू प्रतापै कियो मोहि ना निहोरा है।
कीश सेवकाई तैसे प्रभु प्रभुताई लखि, झूलै रघुराज मन हरष हिंडोरा है॥

❀ सुमिर सो दशा मगन गौरीशा—कदाचित् कोई यह शंका कर बैठे कि ऐसा क्यों हुआ तो उसका कारण यह है कि—सेव्य और सेवक दोनों के प्रेम की पराकाष्ठा का विचार करते ही महादेव जी जो श्री राम जी के परमभक्त हैं ऐसे प्रेमातुर हो गये कि उन का कंठ भर आया इसहेतु थोड़े समय के लिये पार्वती जी से कथा न कह सके । इस के सिवाय हनुमान् जी शंकर जी के अवतार हैं जैसा उत्सव सिन्धु ग्रन्थ में कहा है कि "मेष लग्नें जनागर्भाच्छिवः प्रादुरभूत्स्वयम्" अर्थात् मेष लग्न में अंजनी के गर्भ से स्वयम् शिव जी ही (मानो हनुमान् के रूप से) प्रकट हुए। इसहेतु उनकी दशा को श्री शंकर जी अपनी ही दशा समझ प्रेम से बहुत ही विह्वल हो उठे ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी बारम्बार उन को उठाना चाहते थे परन्तु हनुमान् जी तो प्रेम में ऐसे डूबे थे कि उठना ही न चाहते थे (तुलसीदास जी कहते हैं कि) "रामचन्द्र जी के कमलस्वरूपी चरणों पर हनुमान् का मस्तक" इस दशा का विचार कर श्री महादेव जी प्रेम में मग्न हो गये ॥

चौ०-सावधान मन कर पुनि शंकर । लागे कहन कथा अति सुन्दर ॥
कपि उठाय प्रभु हृदय लगावा । कर गहि परम निकट बैठावा ॥

अर्थ—फिर श्री महादेव जी मन को सावधान कर इस मनोहर कथा का वर्णन करने लगे । निदान हनुमान् जी को उठा कर रामचन्द्र जी ने अपने हृदय से लगा लिया और हाथ पकड़ कर उन को अपने बहुत ही समीप बिठला लिया ॥

चौ०-कहु कपि रावण पालित लंका । केहि विधि दहेउ दुर्ग अति बङ्का ॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना ॥ बोले वचन विगत अभिमाना ॥

अर्थ—(और पूछने लगे) हे हनुमान् ! कहो तो रावण से रक्षा की गई लंका के अति कठिन क़िले को तुम ने किस प्रकार जलाया । हनुमान जी श्री रामचन्द्र जी को प्रसन्न चित्त देख अहंकार रहित वचन बोले ॥

चौ०-†शाखामृग की बड़ि मनुसाई । शाखा तें शाखा पर जाई ॥
लाँघि सिंधु हाटकपुर जारा । निशिचरगण बधि विपिन उजारा
सो *सब तव प्रताप रघुराई । नाथ न कछुक मोरि प्रभुताई ॥

अर्थ—बन्दर की बड़ी बहादुरी यही है कि वह एक डाल से दूसरी डाल पर कूद जाता है । समुद्र को लांघ कर स्वर्णपुरी लङ्का को जलाया और राक्षसों

---

† शाखा मृग की बड़ि मनुसाई । शाखा तें शाखा पर जाई-संस्कृत और हिन्दी हनुमन्नाटक में ठीक यही आशय दरशाया है

सवैया—जानत हौ हम तौ कपि हैं बड़ रूखन के फल के अनुरागी ।
और बड़ो यह पौरुष है इहि डार तें डार परैं तरु लागी ॥
श्री रघुवीर के नामहि लै भवपार तरैं जग मैं बड़भागी ।
ताही को ध्यान कियो मन में मोहि वारिधि लाँघत बार न लागी ॥

* सो सब तव प्रताप रघुराई—सच तो है रघुनाथ जी की मुद्रिका के प्रताप से हनुमान् जी लंका पहुँचे और जानकी जी की चूड़ामणि के प्रताप से इस पार आये । राक्षसों का वध, लंका दहन आदि श्री रामचन्द्र जी के प्रताप ही से किया तभी तो अग्नि से इन का बाल तक बाँका न हुआ, देखो विजय दोहावली में कैसा अच्छा कहा है—

दो०-गइ मुँदरी यहि पार लै, मणि लाई इहि पार ।
राक्षस मारे पुर दह्यो, सो सब कृपा तुम्हार ॥

के समूहों को मार बगीचे का विनाश कर दिया । सो हे श्री रामचन्द्र जी ! यह सब आप ही की कृपा का फल है; हे प्रभु ! उस में कुछ मेरी श्रेष्ठता नहीं है ।

दो०—ता कहँ प्रभु कछु अगम नहिं, जा पर तुम अनुकूल ।
तव प्रताप बड़वानलहि, जारि सकइ खलु तूल ॥३३॥

अर्थ—हे श्री रामचन्द्र जी ! जिस पर आप प्रसन्न हैं उसे कुछ भी कठिन नहीं है. आप के प्रभाव से रुई भी निस्सन्देह समुद्र की अग्नि बड़वानल को भस्म कर सक्ती है (यथार्थ में अग्नि रुई को जलाती है पर यदि आप की इच्छा हो तौ रुई अग्नि को भस्म कर देवै) ॥

चौ०-नाथ* भक्ति तव अति सुखदायनि । देहु‡ कृपा करि सो अनपायनि ॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी । एवमस्तु तब कहेउ भवानी ॥

अर्थ-हे प्रभु ! आप दया कर मुझे अपनी अत्यन्त सुख देने वाली और दूसरों को न मिलने वाली ऐसी भक्ति दीजिये (महादेव जी कहते हैं कि) हे पार्वती ! हनुमान् के बहुत ही सीधे वचनों को सुन श्री रामचन्द्र जी कहने लगे कि ऐसा ही हो (अर्थात् रामचन्द्र जी ने हनुमान् जी को अपनी भक्ति दी) ॥

चौ०—उमा राम सुभाव जिन जाना । ताहि भजन तजि भाव न आना ॥
यह संवाद जासु उर आवा । रघुपति चरण भक्ति तेइ पावा ॥

अर्थ—महादेव जी कहते हैं हे पार्वती ! जिन लोगों ने रामचन्द्र जी के स्वभाव को जान लिया है उन्हें भजन छोड़ और कुछ अच्छा लगता ही नहीं । जिस के हृदय में यह बात चीत (अर्थात् रघुवीर महावीर सम्वाद) भरी रहेगी वह रामचन्द्र जी के चरणों की भक्ति को अवश्य पावेगा ॥

---

* नाथ भक्ति तव अति सुखदायनि—
ध्वनि हम्मीर ताल धीमा—का फल हरिपद सुगति न देती ॥
कोटि जनम की करम वासना, इक छण माहि छीन सब लेती ॥
कौन पदारथ होत सुलभ नहिं मंगल खानि खुलति नहिं केती ॥
योग भक्ति अरु ज्ञान वि-ागढु, मिलत भक्त संपति सब जेती ॥
मम हिय थल में भक्ति बीज बै, करु करुणा कर करुणा खेती ॥
देहु मोहि निज चरण प्रीति फल, विनय करत रघुराज सु एती ॥

‡ देहु कृपा करि सो अनपायनि—भगवान् और हनुमान् के परस्पर प्रेम का प्रभाव पूर्ण प्रकार से प्रदर्शित है (हनुमन्नाटक से)
क०—चन्द्रमा चकोर जैसे गुड्डी बस डोर घन, घोरन सों मोर देवता पियूष पान सों ।
जैसे ऊख पूख पान फूल जल रूख भूप, देश कवि यश सुनो वामन को दान सों ॥
जैसे वेद ज्ञान निरपेख सनमान जैसे, कानन को तान ज्यों सरोज और भान सों ।
जैसे वीर वीर सों ज्यों वारिधि को तीर सों त्यों, ऐसी प्रीति लागी रघुवीर हनुमान सों ॥

चौ०-सुनिप्रभु वचन कहहिं कपिवृन्दा। जय जय जय कृपालु सुखकंदा॥
तब रघुपति कपिपतिहिं बुलावा। कहा चलन कर करहु बनावा॥

अर्थ—रामचन्द्र जी के वचनों को सुन वानरों के समूह कह उठे हे दयालु सुखदाई रघुराई! आप की जय हो, जय हो, जय हो। फिर रामचन्द्र जी ने सुग्रीव को बुलाकर कहा कि चलने की तैयारी करो॥

चौ०-अब विलंब केहि कारण कीजे। तुरत कपिन कहँ आयसु दीजे॥
कौतुक देखि सुमन बहु वर्षे। नभ ते भवन चले सुर हर्षे॥

अर्थ—अब किसहेतु देरी करते हो? जल्दी से वानरों को आज्ञा देओ। यह अद्भुत हाल देख देवताओं ने बहुत फूल बरसाये और वे प्रसन्नचित्त हो आकाश से अपने अपने लोक को गये॥

दो०-कपिपति वेगि बुलायेऊ, आये यूथप यूथ।
अतुलित बल नाना बरन, वानर भाल वरूथ॥३४॥

अर्थ—तब वानर राज सुग्रीव ने तुरन्त ही बुलावा भेजा सो सेनापतियों के झुण्ड के झुण्ड आ पहुंचे और साथ ही अनेक रंग के बड़े पराक्रमी वानर और रीछों के समूह आ गये॥

चौ०-प्रभुपद पंकज नावहिं शीशा। गरजहिं भालु महा बल कीशा॥
देखी राम सकल कपि सैना। चितइ कृपा करि राजिवनैना॥

अर्थ—बड़े २ बलवान् रीछ और वानर श्री रामचन्द्र जी के कमलस्वरूपी चरणों पर शिर नवाते थे और गर्जना करते थे। कमलनयन श्री रामचन्द्र जी ने वानरों की सब सैना देखी और फिर वे उसे दया की दृष्टि से निहारने लगे॥

चौ०-रामकृपा बल पाइ कपिन्दा। भये पक्षयुत मनहुँ गिरिन्दा॥
हर्षि रामतब कीन्ह पयाना। शकुन *भये सुन्दरशुभ नाना॥

शब्दार्थ—गिरिन्दा (सं० गिरीन्द्र)=बड़ा पहाड़।

अर्थ—वानर श्रीरामचन्द्र जी की सुदृष्टि से बलप्राप्त कर ऐसे बलाढ्य हो गये मानो पंख वाले बड़े २ पर्वत हों। तब रामचन्द्र जी ने प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान किया, (चलते समय) उन्हें अनेक उत्तम और शुभ शकुन हुए॥

चौ०-जासु सकल मंगल मय कीती। तासु पयान शकुन यहनीती॥

अर्थ—जिन परमेश्वर के सब कार्य ही मंगलदायक हैं, उन के चलने में शकुन होवे यह केवल व्यवहार मात्र है।

* शकुन—देखो अयोध्याकाण्ड रामायणकी श्री विनायकी टीका की टि० पृ० १५

प्रभु पयान जाना वैदेही। फरकि‡बाम अँग जनु कहि देही ॥

अर्थ—सीता जी को रामचन्द्र जी का प्रस्थान मालूम हो गया, उसे तो बायें अङ्गों ही ने फरक कर सूचित कर दिया ॥

चौ०—जो जो शकुन जानकिहि होई। †असकुन भयउ रावणहि सोई ॥
चला कटक को बरणै पारा। गरजहिं बानर भालु अपारा ॥

अर्थ—जो जो शकुन जानकी जी को होते थे वेही रावण को अपशकुन होते थे। जो सेना चली उस का वर्णन कौन कर सक्ता था, वानर और रीछ बड़ी गर्जना करते थे ॥

चौ०—नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी ॥
केहरि नाद भालुकपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिकरहीं ॥

अर्थ—नख ही हैं हथियार जिन के ऐसे (रीछवानर) जिन में से कोई तो पर्वत, कोई वृक्ष लिये हुए, कोई पृथ्वी पर और कोई आकाश में इच्छानुसार चलते थे। वे रीछ वानर सिंह के समान गर्जते थे (और उन की धमक से) पृथ्वी हिलती थी तथा आठों दिग्गज चिंघारते थे ॥

---

‡ फरकि बाम अँग जनु कहि देही—

स्त्रियों के बायें अङ्ग विशेष कर आँख या भुजा फरक कर इस बात की सूचना करते हैं कि पति से शीघ्र ही भेट होगी, इसी के अनुसार आगतपतिका के बारे में कवियों के कथन को देखिये——

दो०—बाम बाँह फरकति मिलै, जो हरि जीवनमूरि ।
तौ तोही सों भेटि हौं, राखि दाहिनी दूरि ॥

और अयोध्याकाण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० १६ में देखो ॥

† असकुन भयउ रावणहि सोई—इस कथन से एक आशय तो यह निकलता है कि सीता जी को जो शुभ शकुन हुए तो वेही शकुन रावण को अपशकुन हुए और दूसरे सीता जी के बाम अङ्ग फरके तो दशकन्ध के भी बायें अङ्ग फरके जो उसे अपशकुन सूचक हुए। तीसरे और भी नानाप्रकार के अपशकुन जो उस समय लङ्का में होते थे उन में से कुछ रामरसायन रामायण के अनुसार लिखे जाते हैं—

दो०—हवन पठन पूजन थलहि, दरशत व्याल कराल ।
अशन पान साकल्य चहुँ, हों पिपीलिका लाल ॥
खच्चर ऊँट तुरंग नित, ऊरध रोम रहात ।
पुनि रोवत दिन रैन ये अतिहि विकल दरशात ॥
बोलत काक उलूक बहु, रैनि दिवस रव घोर ।
गृद्ध देत मंडल सदा, पुर ऊपर चहुँओर ॥
पुनि दुहुँ संध्या समय नित, बोलत अशुभ शृगाल ।
नगर द्वार सो क्रूर स्वर, करत आप मृग माल ॥

छं०-†चिक्करहिं दिग्गज डोलमहि गिरि लोल सागर खरभरे ।
मन हर्ष दिनकर सोम सुर मुनि नागकिन्नर दुख टरे ॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं ।
जय राम प्रबल प्रताप कौशलनाथ गुण गण गावहीं ॥

अर्थ—दिग्गज चिंघारते थे, पृथ्वी हिलती थी, पहाड़ लुड़कते थे और समुद्र में खलबली पड़ गई थी । सूर्य, चन्द्र और देवताओं के मन में बड़ी प्रसन्नता थी तथा मुनियों, सर्पों और किन्नरों के दुःख दूर हुए ॥ करोड़ों वानरों के भारी योधा कटकटाते थे तथा करोड़ों इधर उधर दौड़ते थे और कहते थे कि हे रामचन्द्र जी ! तुम्हारी जय हो, इस प्रकार वे बड़े प्रतापशाली रामचन्द्र जी का यश गाते थे ॥

छंद०-*सहिसक न भार अपार अहिपति बार बार विमोहई ।
गहि दशन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई ॥
रघुवीर रुचिर पयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी ।
जनु कमठ खप्पर सर्पराज सो लिखत अविचल पावनी ॥

अर्थ—सर्पराज अनंत जी (एक ही स्थान में एकत्रित) इन सब के बड़े बोझ को नहीं सह सक्ते थे इसहेतु बारम्बार मूर्च्छित होते थे और अपने नीचे के कच्छप की कठिन पीठ को दांतों से पकड़े हुए इस प्रकार शोभा देते थे, मानो श्री रामचन्द्र जी के उत्तम प्रस्थान को बहुत ही मनोहर और पवित्र जान कर उसे

---

† चिक्करहिं दिग्गज डोल महि इत्यादि—श्री काशी वासी कविवर मनियार सिंह कृत कविता को देखिये ॥

सेना हनुमंत की दिगंत को चली तुरंत, पीसत अनंत दिग दंतीदंत रूपा से ।
छीर सिंधु छलकै मथानी के मठा सी भूमि, गोल दबि दलकै कराह माह पूपा से ॥
'यार' कहै ढार पाय थार के बरी से ठहराय, गिरिवर गिरे उपमा अनूपा से ।
लचकि लचकि जात लेंजरी से सेस सीस, पचकि पचकि जात कच्छ पीठ कूपा से ॥

* सहि सक न भार अपार अहिपति बारबार विमोहई ......कवि कन्हैया बख्श बैस कृत छप्पय की छटा देखिये ——

चलत सेन महि डगत होत उच्छलित सिंधु जल ।
कढ़त शेष फन सहस धरत अकुलाय धरा बल ॥
कमठ पृष्ठ दल मलत परत दिगदन्तिन खलबल ।
कोल दशन भरिपूल धसत मसकत वत्तस्थल ॥
उड़ै रेणु रवि झंपि गौ भनै 'कान्ह' सकि सप्त तल ।
श्री रामचंद्र गढ़ लङ्क पर चल्यो सज्जि कपि भ्रत्त दल ॥

कच्छप की पीठ पर इस प्रकार लिख रहे हों कि जिसमें वह अटल बना रहे (भाव यह कि शेषनाग के दांतों के चिन्ह जब कच्छप की पीठ पर बन गये तो मानो श्री रामचन्द्र जी की रावण पर चढ़ाई का अटल बीजक बन गया ॥

दो०—इहि विधि जाकर कृपानिधि, उतरे सागर तीर ।
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु विपुल कपि वीर ॥३५॥

अर्थ—इस प्रकार दयासागर श्री रामचन्द्र जी समुद्र के किनारे पर जा उतरे, तब रीछ और वानरों के अनेक योधा यहां वहां के फल खाने लगे ॥

चौ०—वहां निशाचर रहहिं सशंका । जब ते जारि गयउ कपि लंका ॥
निजनिज गृह सब करहिं विचारा । नहिं निशिचर कुल केर उबारा ॥

अर्थ—(अब लंका का हाल सुनिये) जब से हनुमान् जी लंका जलाकर चले गये तब से राक्षसगण बड़ी चिंता में पड़ गये थे । अपने अपने घर में सभी विचार बाँधते थे कि अब राक्षसों के वंश बच नहीं सक्ते ॥

चौ०—जासु दूत बल बरणि न जाई । तेहि आये पुर कवनि भलाई ॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी । मन्दोदरी हृदय अकुलानी ॥

अर्थ—जिस के दूत का बल वर्णन नहीं किया जा सक्ता और जब वे स्वतः नगर में आजावैंगे तब क्या भलाई हो सक्ती है । दूतियों से नगर निवासियों के विचार सुन कर रावण की स्त्री मन्दोदरी हृदय में व्याकुल हो उठी ॥

चौ०—रहसि जोरि कर पतिपद लागी । बोली वचन नीति रसपागी ॥
कंत कर्ष हरि सन परिहरहू । मोर*कहा अति हित चित धरहू ॥

अर्थ—(वह) एकान्त में हाथ जोड़कर पति के चरणों पर गिर पड़ी और नीति शास्त्र से भरे हुए वचन कहने लगी । हे पति ! रामचन्द्र जी से बैर छोड़ो और मेरे बड़े हितकारी वचनों को चित्त में धरो ॥

---

* मोर कहा अति हित चित धरहू—

स०—राम की बाम जो आनि चुराइ के लंक में मीचु की बेलि बई जू ।
क्यों रण जीतहु गे तिन सों जिन की धनुरेख न नाघि गई जू ॥
बीस बिसे बलवंत हु ते जो हुती हग 'केशव' रूप रई जू ।
तोरि शरासन शंकर को पिय सीय स्वयम्वर क्यों न लई जू ॥

चौ०-समुझत जासु दूत की करणी। स्त्रवहिं गर्भ रजनीचर घरणी ॥
तासु नारि निज सचिव बुलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई ॥

अर्थ-जिस के दूत की काररवाई समझते ही राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं। हे पति ! जो आप अपनी भलाई चाहते हो तो उन की स्त्री को अपने मंत्री के साथ (उनके पास) भिजवादो ॥

चौ०-तव कुल कमल विपिन दुखदाई। सीता शीतनिशासम आई ॥
‡सुनहुँ नाथ सीता बिन दीन्हें। हित न तुम्हार शंभुअजकीन्हें ॥

अर्थ-तुम्हारे कमलस्वरूपी कुल के समूह को दुःख देने के लिये सीता मानो शीतल रात्रि के सदृश आई है । हे स्वामी ! सुनो बिना सीता के दिये तुम्हारी भलाई शिव और ब्रह्मा के किये भी नहीं हो सक्ती ॥

दो०-रामबाण अहि गण सरिस, निकर निशाचर भेक ।
*जब लगि ग्रसत न तबहि लगि, यतन करहु तजि टेक ॥३६॥

‡ सुनहुँ नाथ सीता बिन दीन्हें । हित न तुम्हार शंभु अज कीन्हें—

स०-तो सों कहौं दशकन्धर रे रघुनाथ विरोध न कीजिये बौरे ।
बालि बली खर दूषण और अनेक गिरे जेते भीति में दौरे ॥
ऐसहि हाल भई तोहि कौन तो लै मिलु सीय चहै सुख जौरे ।
राम के रोष न राखि सकैं तुलसी विधि।श्रीपति शंकर सौरे ॥

* जब लगि ग्रसत न तबहि लगि, यतन करहु तजि टेक—

मंदोदरी ने यहाँ पर कैसी उत्तम नीति दरशाई है कि जब तक विघ्न प्राप्त नहीं हुआ तभी तक उस से बचने का उपाय करना बुद्धिमानी है नहीं तो परिणाम में नाश अवश्य होता है, कहा है हितोपदेश में—

श्लो०-अनागत विधाता च, प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा ।
द्वावेतौ सुखमेधेते, यद्भविष्यो विनश्यति ॥

अर्थात् अग्रसोची तथा समय के अनुसार काम करने वाला ये दोनों सुख-पूर्वक रहते हैं और होनहार पर भरोसा रखने वाला नाश को प्राप्त होता है ॥ सो यदि तुमने अग्रसोचीपन का काम नहीं किया तो भी अब समयानुसार काम करके विघ्न को दूर करो नहीं तो राक्षसों का नाश अवश्य होगा और बोली—

क०-जैसी मूढ़ताई छाई कंत तो करेजे माहि, वैसी मन भाई सब मंत्रिन शठन्ह की ।
चौपट चबाइन की सीखे बहु गर्व भरी, जानि परी आई नाश घरी यातुधान की ॥
अबहीं सबेरो पिय मान कह्यो मेरो जाय, करौ न अबेरो करि ये तो मंत्र कान की ।
बैर छोड़ जानकी जो चाहै ख़ैर जान की, न दैहै जान जानकी तौ हैहै हानि जान की ॥

अर्थ—रामचंद्र जी के बाण जो सर्पों के सदृश हैं वे मेंडक रूपी राक्षसों को जब तक दबाते नहीं हैं तभी तक हठ छोड़ उपाय करलो (नहीं तो तुच्छ राक्षस तीक्ष्ण राम बाणों से अवश्य मारे जावेंगे) ॥

चौ०—श्रवण सुनत शठ ता कर बानी। विहँसा जगत विदित अभिमानी॥
सभय सुभाव नारि कर साँचा। मंगल महँ भय मन अति काँचा॥

अर्थ—वह मूर्ख जिस का घमण्ड संसार भर में प्रसिद्ध है अपने कानों से मंदोदरी के वचन सुनतेही हँस पड़ा । (और बोला) सचमुच स्त्री का स्वभाव भीरु होता है, देखो शुभ कार्य के समय इस के बड़े कच्चे हृदय में कैसा भय उत्पन्न हुआ ॥

चौ०—जो आवै मर्कट कटकाई। जियहिं बिचारे निशिचर खाई॥
कंपहिंलोकप जा के त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हाँसा॥

अर्थ—जो वानरों की सेना आवैगी तो विचारे राक्षस उन्हें खाकर जियेंगे । जिस के डर से दिग्पाल थर २ कांपते हैं उस की स्त्री डर जाय यह बड़ी हँसी की बात है ॥

चौ०—अस कहि विहँसि ताहि उर लाई। चलेउ सभा ममता अधिकाई॥
मंदोदरी हृदय करि चिंता। †भयो कंत पर विधि विपरीता॥

अर्थ—ऐसा कह हँसते हँसते उसे अपनी छाती से लगा लिया, फिर अधिक अहंकार से भरा हुआ सभा में गया। मन्दोदरी अपने हृदय में इस बात का सोच करने लगी कि पति पर विधाता ही पलट गया है॥

चौ०—बैठेउ सभा ख़बर अस पाई । सिन्धु पार सैना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट*करि रहहू॥
जितेहु सुराखुर तब श्रम नाहीं। नर वानर केहि लेखे माहीं ॥

अर्थ—ज्यों हीं वह जाकर सभा में बैठा तो उसे ऐसी ख़बर मिली कि सेना समुद्र के इस पार आगई। उस ने मंत्रियों से पूछा कि योग्य सलाह तो देओ, वे सब हँस पड़े और कहने लगे कि चुप चाप बैठे रहिये। आप ने जब देवताओं और राक्षसों को वश में किया था तब तो कुछ श्रम ही न हुआ था, फिर मनुष्य और बंदर कौन गिनती में हैं ॥

---

† भयो कंत पर विधि विपरीता—अयोध्या कांड की टि० पृ० १२१ में देखो।
* मष्ट करि रहहू—इस के आगे २० लकीरों का क्षेपक है सो पुरौनी में मिलेगा ।

दो०—†सचिव वैद्य गुरु तीन जो, बोलहिं प्रिय भय आश ।
राज धर्म तन तीन कर, होइ वेगही नाश ॥३७॥

अर्थ—(तुलसीदास जी कहते हैं कि) मंत्री, वैद्य और गुरु इन तीनों में से कोई भी यदि डर किम्वा लोभ के मारे मन भावनी बात कहै तो उस से (क्रमानुसार) राज्य, शरीर और धर्म का जल्दी से नाश हो जाता है (भाव यह कि ठकुर सुहाती कहने वाला मंत्री, रोगी के मन के अनुसार दवाई देने वाला वैद्य और मन माने धर्म विरुद्ध काम करने की आज्ञा देने वाला गुरु ये तीनों नष्ट हैं) ॥

---

† सचिव वैद्य गुरु तीन जो, बोलहिं प्रिय भय आश इत्यादि—
ठीक यही आशय हितोपदेश में मिलता है, यथा—
श्लो०—वैद्यो गुरुश्च मंत्री च, यस्य राज्ञः प्रियः सदा ।
शरीर धर्म कोषेभ्य क्षिप्रं स परिहीयते ॥

(१) सचिव—टुक सोचना चाहिये कि रावण ने भी राजनीति के अनुसार अपने मंत्रियों से सलाह पूछी परन्तु मतिहीन दुष्टात्मा मंत्रियों ने कुमंत्र देकर रावण सरीखे पराक्रमी राजा को बढ़ावा दे मिट्टी में मिलवा दिया, जैसा कामन्दकीय नीति सार में कहा है—
श्लो०—निरुन्धानाः सतांमार्गं, भक्षयन्ति महीपतिम् ।
दुष्टात्मानस्तु सचिवास्तस्मात्सुसचिवो भवेत् ॥
अर्थात् सत्पुरुषों के मार्ग को रोकने वाले दुष्टात्मा मंत्री अपने राजा को खा जाते हैं इसहेतु राजा को चाहिये कि वह उत्तम उत्तम मंत्री रक्खे ॥
उत्तम मंत्रियों को क्या करना उचित है वह भी ऊपर के नीतिग्रंथ ही से उद्धृत किया जाता है—
श्लो०—सज्जमानमकार्येषु निरुन्ध्युर्मंत्रिणो नृपम् ।
गुरूणामपि चैतेषां शृणुयाद्वचनं नृपः ॥
अर्थात् जिस समय राजा कोई अनुचित कार्य करना चाहे उस समय मंत्रियों को चाहिये कि वे उसे रोकें और राजा को भी उचित है कि वह सलाहगीर गुरुजनों के बचन मानें ॥

(२) वैद्य—हाँ में हाँ मिलाने वाला वैद्य प्राणघातक हो जाता है, उत्तम वैद्य के लक्षण तो ये हैं—
सवैया—जानै निदान निघंट विधान लौं नारी को लक्षण रोग अपार है ।
औषधिरूप सवाद विवेक सो पानी औ पौन को भूमि विचार है ॥
चूरण पाग औ पाक घृतादिक यंत्र रसादिक को मत सार है ।
होइ यशी जो धन्वंतरि के सम जानौ 'विश्वेश्वर' वैद उदार है ॥

(३) गुरु—सद्गुरु के लक्षण ये हैं:—
दो०—यदि अकाज कीन्हों, चहै, नर तेहि लेइ बचाइ ।
ठकुर सुहाती ना कहै, सद्गुरु वहै कहाइ ॥

चौ०-सोइ रावण कहँ बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई ॥
अवसर जानि विभीषण आवा। भ्राता चरण शीस तेहि नावा ॥

अर्थ—वही बात रावण को लागू हुई, (मंत्रीगण) ऊंचे स्वर से उस की बड़ाई करने लगे। समय पाकर विभीषण आया और उस ने अपने भाई के पैरों पर मस्तक नवाया (अर्थात् बड़े भाई को प्रणाम किया)॥

चौ०—पुनि शिर नाइ बैठि निजआसन। बोला बचन पाइ अनुशासन॥
जो कृपालु पूछहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहहुँ मैं ताता॥

अर्थ—फिर दुवारा प्रणाम कर अपने स्थान पर जा बैठा और रावण की आज्ञा पाकर कहने लगा। हे दयालु प्रिय बंधु! यदि आप मुझ से पूछते हो तो मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूं॥

चौ०—जो आपन चाहउ कल्याना। सुयशसुमति शुभगति सुखनाना॥
तौ ‡परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चौथि चंदा की नाईं॥

‡ तौ पर नारि लिलार गोसाईं। तजउ चौथि चंदा की नाईं—ठीक यही आशय प्रसन्न राघव में दिया हुआ है, यथा—

श्लो०—उदर्क भूति मिच्छद्भिः, सद्भिः खलु न दृश्यते।
चतुर्थी चंद्र लेखे व, पर स्त्री भाल पट्टिका॥

अर्थात् भविष्य में भला चाहने वाले अच्छे मनुष्य पराई स्त्री के कपाल को इस प्रकार नहीं देखते जिस प्रकार लोग भादों सुदी चौथ के चंद्र को नहीं देखते—भाव यह कि न पराई स्त्री को देखना और न उस के प्राप्त आदि की इच्छा करना। यदि उसे देखे तो अवश्य कलङ्क का भागी होना पड़ेगा, जैसे साक्षात् श्री कृष्ण जी को भी चौथ का चंद्रमा देखने से मणि की चोरी का कलंक लगा था, लिखा है प्रेम सागर में—

दो०—चाँद चौथ को देखियो, मोहन भादों मास।
ता ते लग्यो कलङ्क यह, अति मन भये उदास॥

और भी—

क०—नारि के विकार सब ख्वार किये जीव जंतु, नारि के विकार ब्रह्मादिक भरमाये हैं।
नारि के विकार हार चले सब ऋषि मुनि, नारि के विकार शिव ध्यान सों छुड़ाये हैं॥
नारि के विकार शशि सूर कला दूर भये, नारि के विकार राव रंक मर जाये हैं।
कहै एक साईं लोक नारि का विकार तज, ताते योगी जन संत तभी तो कहाये हैं॥

अर्थ—जो आप अपनी भलाई, सुकीर्त्ति, सुन्दर बुद्धि, उत्तम परिणाम और अनेक सुख चाहते होओ तौ हे गोस्वामी ! दूसरे की स्त्री का मुख इस प्रकार त्यागो जैसे लोग भादों सुदी चौथ के चंद्रमा को त्याग देते हैं (अर्थात् सीता जी को रामचन्द्र जी के पास भिजवा दीजिये)॥

चौ०—चौदह भुवन एक पति होई। भूत द्रोह तिष्ठै नहिं सोई॥
गुण सागर नागर नर जोऊ। अल्प लोभ भल कहै न, कोऊ॥

अर्थ—यदि चौदह लोक का एक मालिक हो और वह प्राणियों पर दुष्टता करै तो वह कभी ठहर नहीं सक्ता। जो मनुष्य गुणों से परिपूर्ण और चतुर हो यदि वह भी थोड़ा सा लोभ करै तो उसे कोई भला नहीं कहता॥

दो०—*कामक्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक कर पंथ।
सब परिहरि रघुवीरपद, भजहु कहहिं सदग्रंथ॥३८॥

अर्थ—हे प्रभु ! काम क्रोध अहंकार और लालच आदि ये सब नरक में जाने के द्वार हैं, इसहेतु सब को छोड़ श्री रामचन्द्र जी के चरणों का भजन करो जैसा कि अच्छे अच्छे ग्रन्थों में कहा है॥

चौ०—तात राम नहिं नरभूपाला। भुवनेश्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। व्यापक अजित अनादि अनंता॥

शब्दार्थ—अनामय (अन् = नहीं + आमय = रोग) = रोग रहित।

अर्थ—हे भाई ! रामचन्द्रजी कुछ संसारी राजा नहीं हैं (वे तो) चौदह लोक के स्वामी कालहू के काल हैं। परब्रह्म रोग रहित, जन्म रहित, षडैश्वर्य शाली हैं सब में भरे हुए, जीतने के योग्य नहीं आरम्भ रहित और अन्त रहित हैं॥

चौ०—गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिंधु मानुष तन धारी॥
जन रंजन भंजन खल व्राता। वेद धर्म रक्षक सुर त्राता॥

शब्दार्थ—गो = पृथ्वी। व्राता = समूह।

अर्थ—वे पृथ्वी, ब्राह्मण, गाय और देवताओं के हितुआ हैं, दयासागर मनुष्य का रूप धारण किये हैं। भक्तों को सुख देने वाले, दुष्टों के समूह को नाश करने वाले, वेद और धर्म की रक्षा करने वाले और देवताओं को बचाने वाले हैं॥

---

* काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक कर पंथ—आरण्यकांड रामायण की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० १२२ में देखो॥

चौ०—ताहि बैर तजि नाइय माथा । प्रणतारति भंजन रघुनाथा ॥
देहु नाथ प्रभुकहँ वैदेही । भजहु *राम बिन काम सनेही ॥

अर्थ—बैर छोड़ उन्हें शिर नवाना चाहिये, क्योंकि रामचन्द्र जी शरण आये हुए के दुःख को दूर कर देते हैं। हे स्वामी ! रामचन्द्र जी को जानकी लौटा दो और उन्हीं का भजन करो जो बिना ही मतलब प्राणियों के हितुआ हैं। (दूसरे प्राणी तो अपने स्वार्थ के हेतु मित्र बन जाते हैं परन्तु रामचन्द्र जी ऐसे नहीं हैं)॥

चौ०—शरण गये प्रभु ताहु न त्यागा । विश्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा ॥
जासु नाम त्रयताप नशावन । सो प्रभु प्रकट समझ जिय रावन ॥

अर्थ—संसार के पापों का दोष भी जिसे लगा हो वह भी यदि परमेश्वर के शरण गया तो उस का भी त्याग उन्हों ने नहीं किया। जिस का नाम लेने से तीनों प्रकार के दुःख (दैहिक, दैविक, मानसिक) नष्ट हो जाते हैं, हे रावण ! अपने मन में सोचो तो सही कि वही प्रभु प्रकट हुए हैं ॥

दो०—बार बार पद लागऊं, विनय करौं दशशीश ।
मान मोह मद परिहरहु, भजहु कौशलाधीश ॥

अर्थ—हे दशमाथ ! मैं बारंबार तुम्हारे पांव पड़कर विनती करता हूं कि बड़ाई, ममता और घमंड को छोड़ कर कौशलपति रामचन्द्र जी का भजन करो ॥

दो०—मुनि पुलस्त्य निज शिष्य सन, कहि पठई यहबात ।
तुरत सो मैं तुम सन कही, पाइ सुअवसर तात ॥३६॥

---

* भजहु राम बिन काम सनेही

राग भैरवी—दयानिधि तुमहीं साँचे मीत ।

तुम बिन और कौन करि है प्रभु, बिन निज स्वारथ प्रीत ॥
प्रति उपकार बिना जीवन को, भलो करत सब रीत ।
जन्म देत रक्षत निशि बासर, सिखवत सुखप्रद नीत ॥
को पितु मातु बंधु जग जिनकी, कीजै कछु परतीत ।
जब निज देहहि काम न आवति, पौरुष भये व्यतीत ॥
तुमहीं जियत मरत के साथी, प्रेम स्वरूप पुनीत ।
दीन दयाल सदा सुख दाता, वेद विदित यश गीत ॥
जो जन आवत शरण तिहारी, मिटत तासु भव भीत ।
'परतापहि' तुम्हरे सहाय ते, सकत न कोऊ जीत ॥

अर्थ—पुलस्त्य मुनि अर्थात् आजा जी ने अपने शिष्य द्वारा यही बात मुझे कहला भेजी थी, हे भाई ! यही बात मैंने ठीक समय समझ कर शीघ्र ही आप से कह सुनाई ॥

चौ०—माल्यवंत इक सचिव सयाना। तासु वचन सुनअति सुखमाना ॥
तात अनुज तव नीति विभूषण। सो उर धरिय जो कहहिं विभीषण ॥

अर्थ—माल्यवंत नाम का एक चतुर मंत्री विभीषण की बातें सुन बहुत ही प्रसन्न हुआ। (और बोला) हे प्रभु ! तुम्हारा भाई विभीषण नीति शास्त्र जानता है, इस हेतु जो कुछ वह कहे वही हृदय में धारण करना उचित है ॥

चौ०—रिपु उत्कर्ष कहत शठदोऊ। दूरि‡न करहु इहां है कोऊ ॥
माल्यवंत गृह गयउ बहोरी। कहेउ विभीषण पुनि कर जोरी ॥

अर्थ—(रावण बोला) ये दोनों मूर्ख बैरी की बड़ाई कर रहे हैं, अरे कोई है ? इन्हें दूर क्यों नहीं करते। सुनते ही माल्यवंत तो अपने घर चला गया और विभीषण फिर से हाथ जोड़ कर कहने लगा (कारण वह इतने पर भी भाई का स्नेह न तोड़ सका) ॥

चौ०—सुमति कुमति सबके उर रहहीं। नाथ पुराण निगम अस कहहीं ॥
जहाँ*सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना ॥

‡ दूरि न करहु इहां है कोऊ— धन्य है तुलसी दास जी को जो यथा स्थान राजनीति आदि का समावेश करते हुए समयोचित कथन से राजाओं आदि के बर्त्ताव को थोड़े ही शब्दों में इस प्रकार उपस्थित कर देते हैं कि मानो वृत्तान्त सन्मुख हो रहा है, देखो हितोपदेश में इसी कथन को क्रोध युक्त राजा यों कहता है 'आः कोऽ त्रस्माकं पुरतो नास्ति यएनं गलहस्त यति' भाव यह कि अरे ! कोई यहां है नहीं, जो इसे गर्दनिया देकर निकाल दे ॥

* जहाँ सुमति तहँ संपति नाना—

श्लोक—सर्वस्य द्वे सुमति कुमती, सम्पदा पत्ति हेतू ।
वृद्धो यूना सह परिचयात् त्यज्यते कामिनीभिः ॥
एको गोत्रे प्रभवति पुमान् यः कुटुंबं बिभर्ति ।
स्त्री पुंवच्च प्रभवति यदा तद्धि गेहं विनष्टं ॥

भाव पहिली पंक्ति का यह है कि सब के हृदय में सुबुद्धि और कुबुद्धि वास करती हैं जो क्रमानुसार ऐश्वर्य और आपत्ति का कारण बन जाती हैं। इसका दूसरा अर्थ संस्कृत व्याकरण से सम्बन्ध रखता है और इसी प्रकार शेष लकीरों के भी दो दो अर्थ होते हैं, परन्तु इस स्थान पर विस्तार के भय से तथा असम्बद्ध होने से नहीं लिखते तो भी सहृद जन इसे समझ लेवेंगे। उत्तम होने से श्लोक पूरा लिख दिया ॥

अर्थ—हे नाथ ! पुराणों और वेदों में कहा हुआ है कि सुबुद्धि और कुबुद्धि सब के हृदय में रहती है। जो प्राणी सुमति वाला है उसे अनेक प्रकार की संपत्तियाँ मिलती हैं और जिस प्राणी में कुबुद्धि विशेष है वह अन्त में आपत्ति भोगता है ॥

चौ०—तव उर कुमति बसी विपरीती। हित †अनहित मानहु रिपुप्रीती ॥
कालराति निशिचर कुलकेरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ॥

अर्थ—तुम्हारे हृदय में तो उलटी कुमति भरी है, इसहेतु तुम अपने मित्र को शत्रु और शत्रु को मित्र मान रहे हो। जो सीता राक्षसों के वंश के लिये मानो प्रलय की रात्रि है उसी सीता पर तुम्हारा भारी प्रेम है ॥

दो०—तात चरण गहि माँगऊँ, राखहु मोर दुलार ।
सीता देवहु राम कहँ, अति हित होय तुम्हार ॥४०॥

अर्थ—हे भाई ! मैं तुम्हारे पैर पड़कर विनती करता हूं कि मेरा मान प्यार राखिये और रामचंद्र को सीता फेर दीजिये ऐसा करने से तुम्हारा अधिक कल्याण होगा ॥

चौ०--बुध पुराण श्रुति सम्मत बानी। कही विभीषण नीति बखानी ॥
सुनत दशानन उठा रिसाई। खल तोहि मृत्यु निकट चलि आई ॥

अर्थ—विभीषण ने ऐसी बातें कहीं जो बुद्धिवानों, पुराणों और वेदों के अनुसार नीति से भरी हुई थीं। (परन्तु) इन्हें सुनते ही रावण क्रोधित हो उठा और कहने लगा, रे दुष्ट ! क्या तेरी मौत आ पहुँची है ?

चौ०--जियसि सदा शठ मोर जियावा। रिपु कर पक्ष सदा तोहि भावा॥
कहसि न खल अस को जग माहीं। भुजबल जेहि जीतेउ मैं नाहीं॥

---

† हित अनहित मानहु रिपु प्रीती—हितोपदेश से

श्लोक—सुहृदां हितकामानां यः शृणोति न भाषितं।
विपत्संनिहिता तस्य स नरः शत्रुनन्दनः॥

अर्थात् हित चाहने वाले अपने सनेहियों के वचनों को जो नहीं सुनता आपत्ति उसके समीप ही आ जाती है और वह मनुष्य अपने शत्रु को आनन्द देने वाला हो जाता है ॥

अर्थ—रे मूर्ख ! तू सदैव मेरे पालने से जीता है (तौभी) तुझे सदा वैरी की सहायता सूझती है । रे दुष्ट ! कहता क्यों नहीं कि संसार में ऐसा कौन है जिसे हमने अपनी भुजाओं के पराक्रम से न जीत लिया हो ? (अर्थात् मैं ने सभी को अपने वश में कर रक्खा है) ॥

चौ०--मम पुर बस तपसिन्ह सन प्रीती ।*शठ मिलु जाइ तिनहिं कहु नीती ॥
‡अस कहि कीन्हेसि चरण प्रहारा । अनुज गहे पद बारहिं बारा ॥

अर्थ—मेरे नगर में बसकर तू तपस्वियों से प्रेम रखता है, रे मूर्ख ! उन्हीं से जाकर मिल और उन्हीं को नीति सिखा । ऐसा कह उस ने उसे एक लात मारी (इतने पर भी) विभीषण ने बारबार उस के चरण पकड़े ॥

चौ०—उमा† संत की यहै बड़ाई । मंद करत जो करै भलाई ॥
तुम पितुसरिस भलेहि मोहि मारा । राम भजे हित होय तुम्हारा ॥
सचिव संग लै नभपथ गयऊ । सबहिं सुनाइ कहत अस भयऊ ॥

* शठ मिलु जाइ तिनहिं कहु नीती— नीति भरी उपदेश की बातें सुन कर रावण का क्रोध भड़क उठा, कुछ शान्ति न हुई, देखो अयोध्या काण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० ८२

‡ अस कहि कीन्हेसि चरण प्रहारा— इसमें कोई कोई लोग कभी कभी यह कह बैठते हैं कि गोसाईं जी ने आरण्य काण्ड में ऐसा क्यों लिखा है कि 'मन में चरण बंदि सुख माना' और यहां सीता जी के फेर देने की सम्मति देने वाले विभीषण को लात क्यों मारी ? सो इस में शंका तो नहीं उठती वरन् गो स्वामी जी का वही कथन पुष्ट होता है कि रावण अपने राक्षसी शरीर से असंतुष्ट होकर उसे जल्दी से छोड़ना चाहता था । इस हेतु अपने भाई विभीषण को रामभक्त समझ उसे विशेष त्रास देकर, ऐसे ही श्री रामचन्द्र जी की प्रिया सीता जी को न लौटा कर अपना मरण शीघ्र ही चाहता था । इसी कारण इसने ऐसा व्यवहार जान बूझ कर किया । आगे चल कर तुलसीदास कृत सवैया इस कथन को पुष्ट करता है, देखो 'रावण जबहिं विभीषण त्यागा' की टिप्पणी – तथा पुरौनी

† उमा संत की यहै बड़ाई । मंद करत जो करै भलाई—जैसा कि कबीरदास जी ने भी कहा है ॥

दो०—जो तोको काँटा बुवे, ताहि बोउ तू फूल ।
तोहि फूल के फूल हैं, वाको हैं तिरशूल ॥

और भी—

दो०—तुलसी संत सुअम्ब तरु, फूल फलहिं परहेत ।
इत तें ये पाहन हनैं, उत तें वे फल देत ॥

अर्थ—महादेव जी कहते हैं कि हे पार्वती! सज्जनों की यही बड़ाई है कि वे अपने साथ बुराई करने वाले से भी भलाई करते हैं। (विभीषण बोले) तुम मेरे पिता के स्थान में हो, जो तुम ने मुझे मारा सो अच्छा किया, परन्तु तुम्हारी भलाई तो रामचन्द्र जी का भजन करने ही से होगी। फिर मंत्रियों को साथ ले आकाश मार्ग से गया और सब को सुनाकर यह कह गया ॥

दो०--राम सत्य ‡संकल्प प्रभु, सभा काल वश तोरि।
मैं रघुनायक शरण अब, जाउँ देहु जनि खोरि ॥४१॥

अर्थ—रामचन्द्र जी तो सत्य संकल्प वाले स्वामी हैं और तुम्हारी सभावाले मृत्यु के वश हो रहे हैं। मैं अब रामचन्द्र जी की शरण जाता हूं मुझे दोष मत देना ॥

चौ० अस कहि चला विभीषण जबहीं। आयुहीन भये निशिचर तबहीं ॥
*साधु अवज्ञा तुरत भवानी। कर कल्याण अखिल कै हानी ॥

अर्थ—ऐसा कहकर ज्योंहीं विभीषण वहां से चला त्योंहीं मानो राक्षस आयुहीन हुए (अर्थात् उन की मृत्यु निकट आ गई)। महादेव जी कहते हैं हे पार्वती! सज्जन का अपमान तुरन्त सब कल्याणों का नाश कर देता है ॥

चौ०—रावण जबहिं विभीषण †त्यागा। भयउ विभव विनु तबहिं अभागा ॥
चलेउ हर्षि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं ॥

‡ सत्य संकल्प=सत्य प्रतिज्ञ, देखो आरण्यकाण्ड की श्री विनायकी टीका को 'सत्य संध' की टिप्पणी पृ० ८६ ॥

* साधु अवज्ञा तुरत भवानी। कर कल्याण अखिल कै हानी श्री मद्भागवत दशमस्कंध के ६ठे अध्याय में लिखा है।

श्लो०—आयुः श्रियं यशोधर्मं, लोकानाशिष एव च।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि, पुंसो महदतिक्रमः ॥

अर्थात् महात्मा पुरुष के अनादर करने से मनुष्य की उमर, संपत्ति, यश, धर्म और सज्जनों के आशीर्वाद आदि सम्पूर्ण कल्याण नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥

† रावण जबहिं विभीषण त्यागा—

स०—वेद विरुद्ध महामुनि साधु सशोक किये सुरलोक उजारेउ।
और कहा कहौं सीय हरी तबहूं करुणाकर कोप न धारेउ ॥
सेवक द्रोह ते छाँड़ि क्षमा 'तुलसी' लख्यो राम सुभाव नियारेउ।
तौ लौं न दाप दल्यौ दशकंधर जौ लौं विभीषण लात न मारेउ ॥

अर्थ—जब रावण ने विभीषण को त्याग दिया तभी से वह भाग्यहीन शोभा रहित हो गया । विभीषण आनन्दपूर्वक रामचन्द्र जी के पास चला, वह अपने मन में अनेक विचार बाँधता जाता था ॥

चौ०—देखिहौं जाइ चरण जलजाता । अरुण मृदुल सेवक सुख दाता ॥
जे पद परसि तरी ऋषिनारी । दंडक कानन पावनकारी ॥

अर्थ—मैं जाकर उन चरण कमलों को देखूँगा, जो लाल कोमल हैं और सेवक को सुख देने वाले हैं । जिन चरणों को छूते ही गौतम ऋषि की स्त्री (अहल्या) तरगई और जो चरण दडकवन को पवित्र करने वाले हैं ॥

चौ०—जे पद जनकसुता उर लाये । कपट कुरंग संग धर धाये ॥
हरउरसरसरोजपद जेई । अहो भाग्य मैं देखब तेई ॥

अर्थ—जिन चरणों को सीता जी ने अपने हृदय में धारण किया है जो चरण छलियामृग के पीछे २ दौड़ते फिरे । जो चरण शिव जी के हृदयरूपी तालाब में कमल के समान हैं (अर्थात् जिन का ध्यान सदाशिव सदा किया करते हैं) उन्हीं चरण कमलों को मैं देखूँगा, मेरे बड़े भाग्य हैं ॥

दो०—जिन पायन्ह कर पादुका, भरत रहे मन लाइ ।
ते ‡ पद आज विलोकिहउँ, इन नयनन्हि अब जाइ ॥ ४२ ॥

अर्थ—जिन चरणों की खड़ाउँओं में भरत जी ने अपना मन लगा लिया, उन्हीं चरणों को मैं अपने इन नेत्रों से अब आज जाकर देखूँगा ॥

चौ०—इहि विधि करत सप्रेम विचारा । आयउ सपदि सिंधु के पारा ॥
कपिन्ह विभीषण आवत देखा । जानेउ कोउ रिपुदूत विशेखा ॥

अर्थ—इस प्रकार प्रेम सहित विचार करते २ वह झट से समुद्र के पैले पार हो गया । जब वानरों ने विभीषण को आते हुए देखा तो उन्हों ने जान लिया कि कोई वैरी का मुख्य दूत है ॥

‡ ते पद आजु विलोकिहउँ, इन्ह नयनन्हि अब जाय-रामरसायन रामायण से—

क०—सुन्दर ललाम सुख धाम अभिराम अति सेय वसु याम उर आनँद वगारि हौं ।
ऊरध कमल वज्र अंकुशादि चिन्ह सबै परसि प्रमोद पाय शोक श्रम टारि हौं ॥
'रसिक बिहारी' रज नैनन लगाय नित लोचन सिराय निज जनम सुधारि हौं ।
नाथ हैं अनाथन के ऐसे रघुनाथ जू के दग भरि आज पदपंकज निहारि हौं ॥

चौ०—ताहि राखि कपिपति पहँ आये। समाचार सब ताहि सुनाये ॥
कह सुग्रीव सुनिय रघुराई। आवा मिलन दशानन भाई ॥

अर्थ—उस को वहीं ठहराकर वानर अपने स्वामी सुग्रीव के पास गये और उन्हों ने उन से सब हाल कह सुनाया। सुग्रीव बोले, हे श्री रामचन्द्र जी! सुनिये, रावण का भाई (विभीषण) आप से मिलने को आया है ॥

चौ०—कह प्रभु सखा बूझिये काहा। कहइ कपीश सुनहु नरनाहा ॥
जानि न जाय निशाचर माया। काम रूपकेहि कारण आया ॥
भेद हमार लेन शठ आवा। राखिय बाँधि मोहि अस भावा ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी कहने लगे, हे मित्र! सुग्रीव तुम (इस के बारे में) क्या कहते हो? सुग्रीव बोले, हे नरश्रेष्ठ रामचन्द्र जी! सुनिये, राक्षसी माया कुछ समझ में नहीं आती, इच्छानुसार रूप धारण करने वाला यह न जाने काहे को आया है। यह मूर्ख हम लोगों का भेद लेने आया होगा, मैं समझता हूं इस को बाँध रखना चाहिये ॥

चौ०—सखा नीति तुम नीक विचारी। †मम प्रण शरणागत भयहारी ॥
सुनि प्रभु वचन हर्ष हनुमाना। शरणागत वत्सल भगवाना ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी बोले, हे मित्र! तुम ने नीति तो ठीक ही विचार से कही परन्तु मेरी टेक तो यह है कि मैं शरण में आये हुए का दुःख दूर करता हूं। श्री रामचन्द्र जी के वचन सुन हनुमान् जी प्रसन्न हुए (कि धन्य है) इन परमेश्वर को जिन्हें शरणागत प्रिय हैं ॥

दो०—शरणागत‡ कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पामर पापमय, तिनहिं विलोकत हानि ॥४३॥

---

† मम प्रण शरणागत भय हारी—राम रसायन रामायण से
स०—एकहुबेर पुकारत आरत, दीन गिरा जन की सुनि पाऊँ ।
तौ तेहि ऊँच न नीच लखौं, गहि कै भुज कंठहि बेगि लगाऊँ ॥
देउँ अभैपद लोक तिहूं बिच, ताहि कबौं छिनहूं न भुलाऊँ ।
सो 'रसिकेस' सुकंठ कहौ, शरणागत को केहि भाँति भगाऊँ ॥

‡ शरणागत कहँ जे तजहिं —— राम रसायन रामायण से—
स०—त्याग करै शरणागत को तेहि के सम पातक और नहीं है ।
रौरव नर्क परै भरि जन्म, चहूँ युग चारहु वेद कही है ॥
आपनि होइ कछू हित हानि, घनो प्रतिपालन ताको सही है ।
आवै विभीषण वेगि मिलौं, प्रण मेरो सुकंठहि आँक यही है ॥

अर्थ — जो प्राणी अपनी हानि विचार शरण आये हुए को त्याग देते हैं, वे मनुष्य बड़े नीच और पापी हैं, उन के मुँह देखने का रवा नहीं ॥

चौ०—कोटि†विप्रबध लागहि जाही । आयेशरण तजउँ नहिंताही ॥
सन्मुख होइ जीव मम जबहीं । जन्मकोटि अघ नाशउँ तबहीं ॥

अर्थ — जिसे अनगिनती ब्राह्मणों की हत्या का पाप लगा हो, यदि वह भी मेरी शरण गहे तो मैं उसे न त्यागूँगा । जिस समय कोई प्राणी मेरे साम्हने आ जाता है तो मैं उसी समय उस के करोड़ों जन्म के पाप नाश कर डालता हूं ॥

चौ०—पापवंत कर सहज सुभाऊ । भजन मोर तेहि भाव न काऊ ॥
***जो पै दुष्ट हृदय सो होई । मेरे सन्मुख आव कि सोई ॥**

अर्थ — पापी प्राणी का सहज स्वभाव यह होता है कि उसे मेरा भजन कभी अच्छा नहीं लगता । यदि वह दुरात्मा होता तो मेरे साम्हने ही क्यों आता ॥

चौ०—निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥
भेद लेन पठवा दशशीशा । तबहुँ न कछु भय हानि कपीशा ॥

अर्थ — जो मनुष्य कपटहीन मन का है, वही मुझे अच्छा लगता है, कारण मुझे कपट, छल और द्वेष अच्छे नहीं लगते । हे वानरराज ! यदि रावण ने उसे भेद लेने को ही भेजा हो तौ भी न कुछ हानि है न डर ॥

---

† कोटि विप्रबध लागहि जाही । आये शरण तजउँ नहिं ताही—

स०—गो द्विज घातक होइ जु पै, तजि कै छल जो शरणागत आवै ।
छोड़ि सबै जग प्रीति प्रतीत, सु एकहि मेरो भरोस दृढ़ावै ॥
ज्यों धन रंकहि भावत है, तेहि ते अधिको मोहि सो हिय भावै ।
जो गति याचत हैं मुनि वृन्द, प्रयास बिना 'रसिकेस' सुपावै ॥

* जो पै दुष्ट हृदय सो होई । मोरे सन्मुख आव कि सोई—भगवद्गीता के ७ वें अध्याय के १५ वें श्लोक में ठीक इसी आशय के वाक्य श्री कृष्ण जी ने अर्जुन से कहे थे यथा———

श्लोक—नमां दुष्कृतिनो मूढ़ाः, प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
मायया ऽ पहृत ज्ञाना, आसुरं भावमाश्रिताः ॥

अर्थात् पापी, मूर्ख, नरों में नीच, जिनका ज्ञान माया ने हर लिया है और जो राक्षसी कर्मों में प्रवृत्त हैं वे मुझे नहीं पाते (भाव यह कि दुराचारी जीव मेरे समीप तक भी नहीं पहुँचते)

चौ०—जग महँ सखा निशाचर जेते । लक्ष्मण हनहिं निमिष महँ तेते ॥
जो सभीत आवा शरणाई । रखिहौं ताहि प्राण की नाई ॥

अर्थ—हे सखे ! संसार में जितने राक्षस हैं उन सबों को लक्ष्मण एक पल भर में मार सक्ते हैं । यदि वह डर के मारे मेरी शरण में आया है तो मैं उस की रक्षा अपने प्राणों के सदृश करूँगा ॥

दो०—उभय भांति लै आवहू, हँसि कह कृपानिधान
जय कृपालु कहि कपि चले, अंगदादि हनुमान ॥४४॥

अर्थ—दयासागर श्री रामचन्द्र जी हँसकर कहने लगे, दोनों प्रकार से (अर्थात् हमारा भेद या शरण लेने आया हो तो भी) उसे लेही आओ, (यह सुन) अङ्गद, हनुमान् आदि, 'दयालु प्रभु की जय हो' ऐसा कहते हुए चले ॥

चौ०—सादर तेहि आगे कर वानर । चले जहां रघुपति करुणाकर ॥
दूरहि ते देखे दोउ भ्राता । नयनानंद दान के दाता ॥

अर्थ—सब वानर उसे आदरपूर्वक आगे करके उस ओर चले, जहां दयासागर श्री रघुनाथ जी थे । विभीषण ने दूर ही से राम लक्ष्मण को देखा जो नेत्रों को आनन्दरूपी दान के देनेवाले थे (अर्थात् जिन के दर्शन ही से नेत्रों में आनंद भर जाता है) ॥

चौ०—बहुरि राम छवि धाम विलोकी । रहेउ * ठठुकि इकटक पल रोकी ॥
भुज प्रलम्ब कंजारुण लोचन । श्यामल गात प्रणत भय मोचन ॥

अर्थ—फिर वह छबीले श्री रामचन्द्र जी को देख खड़ा रह गया और इकटक निहारने लगा । उन की भुजाएं लम्बी और नेत्र कमल के समान लाल थे, शरीर श्यामला और वे शरणागत के डर को दूर करने वाले थे ॥

चौ०—सिंह कंध आयत उर सोहा । आनन अमित मदन छवि मोहा ॥
नयन नीर पुलकित अति गाता । मन धरि धीर कही मृदुबाता ॥

अर्थ—सिंह के समान कंधे और चौड़ी छाती शोभायमान थी, चेहरा कामदेव की अपार शोभा का दबाने वाला था । (विभीषण) नेत्रों में आंसू भर के और रोमांचित शरीर हो, हृदय में धीरज धर, नम्रवचन कहने लगा ॥

---

* रहेउ ठठुकि इकटक पल रोकी——
राग सोरठ—अँखियाँ रामरूप अनुरागी ।
श्याम बरन मन हरन माधुरी मूरति अति प्रिय लागी ॥
सुन्दर वदन मदन शत शोभा निरखि निरखि रस पागी ।
'रतन हरी' पल टरत न टारी परम प्रेम रँग रागी ॥

चौ०—*निशिचरवंश जनम सुर त्राता। नाथ दशानन कर मैं भ्राता ॥
सहज पाप प्रिय तामस देहा। यथा उलूकहिं तम पर नेहा ॥

अर्थ—हे देवताओं को रक्षा करने वाले! मेरा जन्म राक्षस कुल में है, हे प्रभु! मैं रावण का भाई हूं। ये राक्षसी देह स्वभाव ही से पाप करने वाली है, जिस प्रकार घुग्घू-पक्षी (अरुआ) को अँधेरे से प्रीति रहती है ॥

दो०—श्रवण ‡सुयश सुनि आय-ऊँ, प्रभु भंजन भव भीर ।
त्राहि त्राहि आरति हरण, शरण सुखद रघुवीर ॥४५॥

---

* निशिचर वंश जनम सुर त्राता । नाथ दशानन कर मैं भ्राता —

क०—अधम अभागी अनुरागी हौं कुसंगति को, जाति हौं निशाचर कुबंधु दशशीश को ।
नामहै विभीषण विहाय सुत दारा गेह, आयो हौं शरण अवलंब एक ईश को ॥
'रसिक बिहारी' दीन बन्धु अपनाय मोहि, कीजै खास दास अब लषन कपीश को ।
नाथ गुण गै हौं निजलोचन सि रैहौं भेद, दै हौं सब मरम बतै हौं भुजबीश को ।

और भी—

'निशिचर वंश' इस शब्द पर कोई २ यह शंका कर बैठते हैं कि बालकाण्ड में तो ऐसा लिखा है कि 'उपजे यदपि पुलस्त्य कुल पावन अमल अनूप' और यहां पर निशिचर वंश कैसा, कहा-सो बालकाण्ड के ऊपर कहे हुए दोहे की दूसरी लकीर पढ़ने से उस का समाधान हो जाता है जैसे 'तदपि महीसुर शापवश, भये सकल अघरूप' सो तुलसी दास जी के कथनानुसार शापवश ये अपने दुष्ट आचारणों से राक्षस समझे गये जैसा कि बालकाण्ड में कहा है—

'जिन के ये आचरण भवानी । ते जानहु निशिचर सम प्रानी' ॥

इस के सिवाय पुलस्त्य मुनि के लड़के विश्रवा की चार पत्नी थीं । एक ब्राह्मणी जिस से कुवेर उत्पन्न हुए थे । इन्हें किसी ने राक्षस नहीं कहा परन्तु शेष तीन स्त्रियाँ राक्षसवंश की थीं । जिन से रावण, कुम्भकरण, विभीषण, खर और सूपनखा हुई थी जो सब राक्षसवंशी कहलाये ॥

‡ श्रवण सुयश सुनि आयऊँ—गीतावली रामायण से-

दीन हित विरद पुराणन्हि गायो ।—
आरत बंधु कृपाल मृदुल चित जानि शरण हौं आयो ॥
तुम्हरे रिपु को अनुज विभीषण वंश निशाचर जायो ।
सुनि गुण शील स्वभाव नाथ को मैं चरणनि चितु लायो ॥
जानत प्रभु दुख सुख दासन्ह को ताते कहि न सुनायो ।
करि करुणा भरि नयन विलोकहु तो जानउँ अपनायो ॥
बचन विनीत सुनत रघुनायक हँस कर निकट बुलायो ।
भेट्यो हरि भरि अङ्क भरत ज्यों लंकापति मन भायो ॥
कर पंकज शिर परस अभय कियो जन पर हेत दिखायो ।
'तुलसिदास' रघुवीर भजन करि को न परमपद पायो ॥

अर्थ—हे संसार के दुःखों से दूर करने वाले प्रभु! आप की उत्तम कीर्त्ति कानों से सुनकर आया हूँ, हे क्लेश के दूर करने वाले तथा शरण में आये हुए को सुख देने वाले रामचन्द्र जी! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो ॥

चौ०—अस कहि करत दंडवत देखी। तुरत उठे प्रभु हर्ष विशेखी॥
दीन वचन सुनि प्रभु मन भावा। †भुजविशाल गहि हृदय लगावा॥

अर्थ—इतना कह कर ज्योंहीं उस ने दण्डवत की त्योंहीं उसे देख श्री रामचंद्र जी विशेष आनन्दपूर्वक शीघ्र उठ खड़े हुए। नम्रता भरे वचन श्री रामचन्द्र जी को प्यारे लगे और उन्हों ने अपनी लम्बी भुजाओं से उठाकर उसे हृदय में लगा लिया ॥

चौ०—अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले वचन भक्त भय हारी॥
कहु‡लंकेश सहित परिवारा। कुशल कुठाहर बास तुम्हारा॥

---

† भुज विशाल गहि हृदय लगावा—रामचन्द्र भूषण से——

स०—जा हित शम्भु सुरेश गनेश महेश महा मग्न साधन फेटे ।
जा हित योगि जपी तपसी यति जाल जपैं तन छार धुरेटे ॥
कौतुक या 'लछिराम' लखो पुलके तन यों अनुराग लपेटे ।
राक्षस वंश विभीषण ते भरि अङ्क में भाय भरत्थ सों भेटे ॥

‡ लंकेश—इस शब्द से यह भविष्य सूचित किया कि रामचन्द्र जी विभीषण को लंका का राज्य मानो दे ही चुके। इसी पर कभी २ यह शंका की जाती है कि विभीषण को रावण के जीते जी लंकेश कहा और तिलक भी कर दिया। ऐसा ही सुग्रीव को क्यों नहीं किया ? उसे तो वालि को मार कर राज-तिलक करवाया। इस का समाधान यह है कि वालि कुछ राक्षसी कर्म न करता था और न उस के हेतु श्री रामचन्द्र जी वहाँ गये थे, उन्हें तो हनुमान् सुग्रीव की सहायता करने को लिवा लाये थे। वहाँ पर परस्पर मित्रता होने से अपने मित्र सुग्रीव के शत्रु अत्याचारी वालि को मारा था, क्योंकि राजनीति के अनुसार प्रथम तो अपने मित्र की सहायता करनी उचित थी। दूसरे अत्याचारियों को दंड देना योग्य था ॥

विभीषण तो रावण के राज्य में बसते हुए भी अपने गृह को राम नाम के अक्षरों से चिन्हित किये था, राम भक्त था और अपने भाई तथा कुटुम्ब के लोगों को छोड़ कर श्री रामचन्द्र जी की शरण में आया था सो उसे शरण में रख लिया।

इन सब बातों का विचार कर उसे लंकेश कह कर राज तिलक कर दिया, क्योंकि रावण के वध के लिये तो आये ही थे। सो राजनीति के अनुसार रावण के भाई विभीषण को उसका उत्तराधिकारी बना कर भेद का उपयोग किया, कहा है हितोपदेश में :-

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण सहित विभीषण से मिले और उन्होंने उसे अपने पास बिठलाया, भक्तों के भय को दूर करने वाले, प्रभु जी कहने लगे-हे लंका के राजा! तुम अपने कुटुम्बियों सहित कुशल से तो हो, तुम्हारा रहना बुरे स्थान में है ॥

चौ०—खल मंडली बसहु दिन राती। सखा धर्म निबहै केहि भाँती॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अतिनय निपुण न भाव अनीती॥

अर्थ—तुम दुष्टों की समाज में दिन रात रहते हो, हे प्यारे! तुम्हारा धर्म कैसे चलता है। मुझे तुम्हारी सब रीति मालूम है तुम नीति में चतुर हो, तुम्हें अन्याय अच्छा नहीं लगता ॥

चौ०—बरु *भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ विधाता॥
अब पद देखि कुशल रघुराया। जो तुम कीन्हि जान जन दाया॥

श्लोक—दायादादपरो मंत्रो नास्ति भेद करो द्विषां।
तस्मादुत्थापयेद्यत्नाद्दायादं तस्य विद्विषः॥

अर्थात् शत्रुओं को नाश करने वाला दायाद (अर्थात् उत्तराधिकारी) के समान दूसरा उत्तम उपाय नहीं है इसहेतु यत्न करके शत्रु के राज्याधिकारी को उभाड़े।

इस नीति के विचार से श्री रामचन्द्रजी ने विभीषण को पहिले ही से राजतिलक करके भेद आदि लेने के निमित्त उसे अपनी शरण में लिया और तभी से यह कहावत प्रसिद्ध हुई कि 'घर का भेदी लंका ढाह' (विभीषण की सहायता आदि का हाल लंका काण्ड में मिलेगा)

* बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ विधाता—

नरक और दुष्टों की संगति दोनों इच्छित नहीं हैं तौ भी नरक का वास कदाचित् इसहेतु सहने के योग्य समझा गया कि उस में दिनों दिन पापों के घटते जाने से छुटकारा पाने का सुख समीप ही समीप आता जाता है और इस में कष्ट शरीर ही को होता परन्तु दुष्ट संग में देह और मन के कष्ट अधर्मों के साथ प्रतिदिन बढ़ते ही जाते हैं और दुर्जन तो सर्प से भी अधिक क्रूर और दुःखदाई होता है जैसा कहा है—

श्लोक—सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः सर्पात् क्रूर तरः खलः।
सर्प एकाकिनं हन्ति खलः सर्व विनाश कृत्॥

अर्थात् सर्प दुष्ट होता है और दुर्जन भी दुष्ट होता है परन्तु सर्प से दुर्जन बहुत ही दुःखदाई समझा गया है कारण सर्प तो एक को मारता है परन्तु दुष्ट सर्वनाश कर डालता है॥

और भी—

अर्थ—हे प्यारे ! नरक का रहना एक लेखे अच्छा है परन्तु, विधाता दुर्जनों की संगति न देवै (विभीषण) बोले । रामचन्द्र जी अब आप के चरणों के दर्शनों से मेरी भलाई है कारण आपने दीन जान मुझ पर दया की ॥

दो०—तब † लगि कुशल न जीव कहँ, सपनेहुं मन विश्राम ।
जब लगि भजत न राम कहँ, शोक धाम तजि काम ॥४६॥

अर्थ—जब तक प्राणी दुःखों के स्थान काम का त्याग कर आप का भजन नहीं करता तब तक उसे कुशल नहीं और न स्वप्न में भी उस के चित्त को चैन मिलेगी ॥

चौ०—*तब लगि हृदय बसत खल नाना । लोभ मोह मत्सर मद माना ॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा । धरे चाप सायक कटि भाथा ॥

अर्थ—जब तक हृदय में रामचन्द्र जी धनुषबाण धारण किये और कमर में तरकस बांधे न बसैं, तब तक हृदय में लोभ ममता, अहंकार, मत्सर, मद और मान इन अनेक दुष्टों का बास रहता है ॥

चौ०—ममता तिमिर तरुण अँधियारी । राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥
तब लगि बसत जीव मन माहीं । जब लगि प्रभु प्रताप रविनाहीं ॥

सवैया—सर्प डसे सु नहीं कछु तालक बीछु लगे सु भलो कर मानो ।
सिंह हु खाय तो नाहिं कछू डर जो गज मारत तो नहिं हानो ॥
आग जरो जल बूड़ मरो गिर जाय गिरो कछु भै मत आनो ।
'सुन्दर' और भले सबही दुख दुर्जन संग भलो जिन जानो ॥

* तब लगि कुशल न जीव कहँ सपनेहु मन विश्राम ।
जब लगि भजत न राम कहँ शोक धाम तजि काम ॥

ग़ज़ल—भजन भगवान का करले भरम में क्यों भटकता है ।
यहाँ तेरा नहीं कोई वृथा क्यों सिर पटकता है ॥
भजन बिन जिन्दगी गर तू वृथा नादान खोवेगा ।
पड़े फिर गर्भ में जहँ पर तू उलटा ही लटकता है ॥
नहीं फल पायेगा जब तक पड़ा है कुफ़ में काफिर ।
हृदय में काम का कंटक तेरे जब तक खटकता है ।
लगा मन ब्रह्म से सम्यक जो हो कल्याण की ख़्वाहिश ॥
नहीं तो काल अब तुझ को कोई दम में गटकता है ।
बसे 'बलदेव' हिरदे में वही सत मित्र है तेरा ॥
हमेशा हर बुराई से वही सब को हटकता है ॥

अर्थ—मोह यही अन्धकार है और जवानी अँधेरी रात्रि है जो विषय तथा वैर रूपी उल्लुओं को सुख देने वाली है । ये सब जीवधारियों के हृदय में तभी तक रहते हैं, जब तक आप का प्रतापरूपी सूर्य उदय नहीं होता (अर्थात् आप के प्रताप के सन्मुख ममता आदि सब नष्ट हो जाते हैं) ॥

चौ०—अब मैं कुशल मिटे भय भारे । देखि राम पद कमल तुम्हारे ॥
तुम कृपाल जा पर अनुकूला । ताहि न व्याप त्रिविध*भव शूला ॥

अर्थ—हे रामचन्द्र जी ! आप के कमल स्वरूपी चरणों को देख मैं कृतार्थ हुआ और मेरे सब भारी भय दूर हुए । हे दयालु ! आप जिस पर प्रसन्न होते हैं उसे सांसारिक तीनों प्रकार के दुःख नहीं सताते (अर्थात् आप के अनुग्रह से प्राणी के दैहिक, दैविक और मानसिक दुःख दूर हो जाते हैं) ॥

चौ०—मैं निशिचर अति अधम सुभाऊ । शुभ आचरण कीन्ह नहिं काऊ ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा । सो प्रभु हरषि हृदय मोहि लावा ॥

अर्थ—मैं राक्षस अति नीच स्वभाव वाला हूं, मैंने कभी उत्तम कर्म नहीं किये । ऐसे मुझ को आपने प्रसन्नता पूर्वक हृदय से लगा लिया, आप का रूप तो मुनियों के ध्यान में भी नहीं आता ॥

दो०—अहो भाग्य मम अमित अति, राम कृपा सुख पुंज ।
*देखेउँ नयन विरंचि शिव, सेव्य युगल पद कंज ॥ ४७ ॥

अर्थ—वाह ! मेरे बड़े भाग्य हैं कि मैंने कृपा के पुञ्ज और सुख के समूह, रामचन्द्र जी के उन कमल स्वरूपी चरणों के दर्शन पाये जिनकी सेवा ब्रह्मा और महादेव जी किया करते हैं ॥

---

* त्रिविध भव शूला = त्रैताप, देखो अयोध्याकांड की टीका टी०पृ० ३५१

* देखेउं नयन विरंचि शिव, सेव्य युगल पद कंज

बंदौं मैं चरण सरोज तिहारे

सुन्दर श्याम कमल दल लोचन ललित त्रिभंग प्राण पति प्यारे ।
जे पद पद्म सदाशिव को धन सिन्धु सुता उरते नहिं टारे ॥
जे पद पद्म तात रिस त्रासत मन वच क्रम प्रहलाद सम्हारे ।
जे पद पद्म लोक त्रय पावन सुरसरि दरश कटत अघभारे ॥
जे पद पद्म परसि ऋषि पत्नी नृप अरु व्याध अमित खल तारे ।
ते पद पंकज 'सूरदास प्रभु त्रिविधि ताप दुख हरण हमारे ॥

चौ०—सुनहु सखा निज कहहुँ सुभाऊ। जान भुशुंडि शंभु गिरिजाऊ।
जो नर होइ चराचर द्रोही। आवइ सभय शरण तकि मोही॥
तजि* मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥

अर्थ—हे मित्र! मैं अपना स्वभाव वर्णन करता हूं जिसे कागभुशुंडि, शिव और पार्वती जी भी जानती हैं। जो मनुष्य चलने वाले और अचल जीवों को दुःख पहुंचाने वाला भी हो यदि वह डर के मारे मेरी शरण में आवै तो मैं उस के मद, ममता; कपट और छलों को मिटाकर उसे तुरन्त साधु के समान कर देता हूं॥

चौ०—‡जननी जनक बंधु सुत दारा। तन धन भवन सुखद परिवारा॥
सब की ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँधि बट डोरी॥

अर्थ—माता, पिता, भाई, लड़का, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र और कुटुम्बी। इन सबके प्रेमरूपी सूत्र को इकट्ठा कर सब की डोरी बना मेरे चरणों में मनसे लगावे (अर्थात् घर, द्वार और परिवार सब से स्नेह छोड़ मेरे चरणों में चित्त लगावे)

---

*तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्यतेहि साधु समाना—श्रीमद्भगवद्गीता अ० ९

श्लोक—अपि चेत्सु दुराचारो भजते मामनन्यभाक्
साधुरेव समंतव्य स्सम्यग् व्यवहितोहिसः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि नमे भक्तः प्रणश्यति॥ ३१॥

अर्थात् जो मनुष्य दुष्ट आचारण का भी होकर सब को छोड़ हम ही को भजता है उसे सदाचारी ही समझो क्योंकि वह दृढ़विश्वासी है॥३०॥ वह मनुष्य ऐसे विश्वास के कारण शीघ्र ही धर्मात्मा हो नित्य शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन तुम निश्चय पूर्वक समझ लो कि मेरा भक्त नाश को प्राप्त नहीं होता॥ ३१॥

‡ जननी जनक बंधु सुत दारा———जैसा रामरक्षा में लिखा है—

रामो माता मत्पिता रामचन्द्रः स्वामी रामो मत्सखा रामचंद्रः।
सर्वस्वम्मे रामचंद्रो दयालुर्नान्यं जाने नैव जाने न जाने॥

अर्थात् राम ही माता के स्थान में हैं, राम ही पिता हैं राम ही स्वामी और राम ही मित्र हैं। मेरे तो दयालु रामचंद्र ही सब कुछ हैं मैं दूसरों को नहीं जानता नहीं जानता नहीं जानता।

और भी देखो आरण्यकांड की श्री विनायकी टीका में 'गुरु पितु मात बंधु पति देवा' की टिप्पणी.

※समदर्शी इच्छा कछु नाहीं। हर्ष शोक भयनहिं मन माहीं ॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसत धन जैसे ॥

अर्थ—जो सब को समान समझे, जिसे कुछ भी इच्छा न हो और जिस के मन में सुख दुःख तथा भय न हो, ऐसा सत्पुरुष मेरे हृदय में इस प्रकार निवास करता है जिस प्रकार लालची के हृदय में धन (अर्थात् ऐसे सज्जन को मैं कभी नहीं भूलता)॥

चौ०—तुम सारिखे संत प्रिय मोरे। ※धरउँ देह नहिं आन निहोरे॥

अर्थ—तुम सरीखे सज्जन मुझे प्यारे हैं मैं और किसी के हेतु शरीर धारण नहीं करता (अर्थात् सज्जनों के संकट टारने के हेतु ही मैं अवतार लेता हूं)॥

दो०—सगुण उपासक परम हित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्राण समान मम, जिनके द्विजपद प्रेम ॥४८॥

अर्थ—जो लोग अवतार आदि से अपना बड़ा लाभ समझते हैं जो नीति के अनुसार चलते और जिनका प्रण पक्का है; तथा जिन की प्रीति ब्राह्मणों के चरणों में रहती है वे लोग मुझे प्राणों के समान प्यारे हैं।

चौ०—सुनु लंकेश सकल गुण तोरे। ताते तुम अतिशय प्रिय मोरे॥
राम वचन सुनि वानर यूथा। सकल कहहिँ जय कृपा वरूथा॥

---

* समदर्शी इच्छा कछु नाहीं। हर्ष शोक भय नहिं मन माहीं —श्री मद्भगवद्गीता के १२ वें अध्याय में यों लिखा है—

श्लोक—यस्मान्नो द्विज ते लोका लोकान्नो द्विजतेचयः।
हर्षामर्षा भयोद्वेगैर्मुक्तो यः सच मे प्रियः॥

अर्थात् जिसके द्वारा किसी को दुःख न पहुँचे और जो लोगों से दुःख न पावे और जिस ने हर्ष शोक, भय, और व्याकुलता का त्याग कर दिया है ऐसा प्राणी मुझे प्यारा लगता है।

*धरउँ देह नहिं आन निहोरे-देखो अयोध्याकाण्ड की श्री विनायकी टीका टि०पृ०१६१औरभी

राग आसावरी—भक्त हेतु अवतार धरौं मैं।

कर्म धर्म के वश मैं नाहीं योग यज्ञ मन में न धरौं मैं॥
दीन गुहार सुनौं श्रवणन भरि गर्व वचन सुन हृदय जरौं मैं।
भावाधीन रहौं सबही के और न काहू ते नेक डरौं मैं॥
ब्रह्मा आदि कीट लौं व्यापक सब को सुख दे दुखहि हरौं मैं।
सूरश्याम तब कही प्रकट ही जहाँ भाव तहँ ते न टरौं मैं॥

अर्थ—हे विभीषण! सुनो, ऊपर कहे हुए सब लक्षण तुम में हैं इसी से तुम मुझे बहुत ही प्यारे लगते हो। रामचन्द्र जी के इन वचनों को सुन सब वानरों के समूह कह उठे हे कृपा के स्थान रामचन्द्र जी आप की 'जय हो'॥

चौ०—सुनत विभीषण प्रभुकर बानी। नहिँ अघात श्रवणामृत जानी॥
पद अम्बुज गहि बारहिंबारा। हृदय समात न प्रेम अपारा॥

अर्थ—विभीषण रामचन्द्र जी के वचनों को सुन और उन्हें कानों को अमृत समान जान तृप्त न हुए। उन ने बारबार उनके कमलस्वरूपी चरण गहे, तौभी अत्यन्त प्रीति उनके हृदय में नहीं समाती थी॥

चौ०—सुनहुँ देव सचराचर स्वामी। प्रणतपाल उर अंतरयामी॥
उर* कछु प्रथम बासना रही। प्रभुपद प्रीति सरित सो बही॥

अर्थ—हे चर और अचर जीवों के प्रभु, शरणागत के पालने वाले और हृदय का भेद जाननेवाले देव सुनिये! मेरे हृदय में जो पहिले कुछ (तामसरूपी) बासना थी वह आप के चरणों की प्रीतिरूपी नदी में बह गई (अर्थात् जो आप के चरणों में प्रीति हुई तौ पहिले के दुष्ट विचार मिट गये)॥

चौ०—अब कृपालु निज भक्ति जो पावनि। देहु दया करि शिव मन भावनि॥
एवमस्तु कहि प्रभु रण धीरा। मांगा तुरत सिंधु कर नीरा॥

अर्थ—हे दयालु! कृपा करके अब मुझे अपनी वह पवित्र भक्ति दीजिये जो शंकर जी के चित्त में चुभी है। शूर शिरोमणि श्री रघुनाथ जी कहने लगे "ऐसा ही होवै" (अर्थात् मैंने तुम्हें अपनी भक्ति दी) और फिर जल्दी से समुद्र का जल मँगवाया॥

---

* उर कछु प्रथम बासना रही—

राग टोड़ी—कहों कहा अपनी अधमाई।

उरझो कनक कामिनी के रस नहिं कीरति प्रभु गाई॥
जग झूठे को साँच जान के तासों रुचि उपजाई।
दीनबंधु सुमिरयों नहिं कबहूं होत जो संग सहाई॥
मगन रह्यो माया में निशि दिन छुटी न मन की काई।
कह 'नानक' अब नाहिं अनत गति बिन हर की शरनाई॥

चौ० --*यदपि सखा तोहि इच्छा नाहीं । मम दर्शन अमोघ जगमाहीं ॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा सुमनवृष्टि नभ भई अपारा ॥

अर्थ—हे मित्र! यद्यपि तुम्हें कुछ इच्छा नहीं है तौभी संसार में मेरे दर्शन उपमा रहित हैं । इतना कह रामचन्द्र जी ने उसे राजतिलक कर दिया, तब आकाश से फूलों की बहुत वर्षा हुई (अर्थात् देवताओं ने फूल बरसा कर प्रसन्नता-पूर्वक यह दरशाया कि धन्य है रघुनाथ जी को जिन्होंने थोड़ी ही भक्ति से विभीषण को लंका का बड़ा भारी राज्य सौंप दिया) ॥

दोहा—रावण क्रोध सु अनल निज, श्वास समीर प्रचंड ।
जरत†विभीषण राखेऊ, दीन्हेउ राज अखंड ॥

अर्थ—रावण का क्रोध अग्नि के समान था और उसकी सांस मानों तीव्र पवन थी, ऐसी अग्नि में जलते हुए विभीषण को बचा लिया और उसे अटल

---

* यदपि सखा तोहि इच्छा नहीं—अध्यात्म रामायण लंका काण्ड सर्ग तीसरे से

श्लोक-लंका राज्येभिषेक्ष्यामि जलमानय सागरात् ।
यावच्चन्द्रश्चसूर्यश्च यावत्तिष्ठतिमेदिनी ॥ ४३ ॥
यावन्मम कथा लोके तावद्राज्यं करोत्वसौ ।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणे नाम्बुह्यानाय्यकलशेनतम् ॥ ४४ ॥
लंका राज्याधिपत्यार्थं मभिषेकं रमापतिः ।
कारयामास सचिवै र्लक्ष्मणे न विशेषतः ॥ ४५ ॥

अर्थात् (रामचन्द्र जी लक्ष्मण से कहने लगे कि) तुम समुद्र से जल ले आओ मैं (विभीषण को) लंका के राज्य का अभिषेक किये देता हूं । जब तक चन्द्र व सूर्य तथा पृथ्वी विद्यमान हैं और जब तक मेरी कथा संसार में रहे तब तक विभीषण राज्य करता रहे । यह कह कर श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण से कलश में जल मंगवा कर उस जल से उन्हों ने विभीषण को लंका का राज्य का तिलक मंत्रियों के द्वारा विशेष कर लक्ष्मण के हाथ से करा दिया ॥ ४३,४४,४५ ॥

† जरत विभीषण राखेऊ दीन्हेउ राज अखंड—

रागगौरी—कुटुँब तज शरण राम तेरी आयो ।
तज गढ़ लंक महल और मंदिर नाम सुनत उठधायो ॥
भरी सभा में रावण बैठ्यो चरण प्रहार चलायो ।
मूरख अन्ध कह्यो नहिं माने बार बार समझायो ॥
आवत ही लंकापति कीन्हों हरि हँस कंठ लगायो ।
जन्म जन्म के मिटे पराभव राम दरश जब पायो ॥
हैं रघुनाथ अनाथ के बंधू दीन जान अपनायो ।
तुलसिदास रघुवर की शरणा भक्ति अभय पदपायो ॥

राज्य दे दिया (सारांश यह है कि रावण के क्रोध से बचाकर रामचन्द्र जी ने विभीषण को लंका का राजा बना दिया) ॥

दोहा—जो*संपति शिव रावणहि दीन्हि दिये दश माथ।
सो संपदा विभीषणहि, सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥४९॥

अर्थ—दशों शिर (काटकर) चढ़ाने से जो सम्पति महादेव जी ने रावण को दी थी वही सम्पति रामचन्द्र जी ने विभीषण को दे डाली परन्तु सकोच के साथ (अर्थात् सोच इस बात का कि मैं ने विभीषण को बहुत थोड़ा दिया और भी देता तो अच्छा था) ॥

---

* जो सम्पति शिव रावणहि दीन्हि दिये दशमाथ—

भजन—ऐसो को उदार जगमाहीं ।

बिन सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ॥
जो गति योग विराग यतन करि नहिं पावत मुनि ज्ञानी ।
सो गति देत गीध शवरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ॥
जो सम्पति दशशीस साधि करि रावण शिव पहँ लीन्हीं ।
सो सम्पदा विभीषण कहँ अति सकुच सहित हर दीन्हीं ॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।
तौ भजु राम काम सब पूरण करै कृपानिधि तेरो ॥

कोई २ महाशय यहाँ यह शंका कर बैठते हैं कि जब रामचंद्र जी ने लंका की सब सम्पदा विभीषण को दे दी तो वे जानकी जी और पुष्पक विमान को साथ ले अयोध्या को क्यों लौटे ऐसे शंका करने वालों को थोड़ा विचार करना चाहिये कि पुष्पक विमान को तो रावण अपने भाई कुवेर से छीन लाया था और सीता जी का हरण कर लाया था यह सम्पदा में शामिल नहीं है और न शिव जी ने इन्हें रावण को सौंपा था इसहेतु यह शंका बहुत ही अयोग्य है तौ भी इस का स्पष्टी करण 'विजय दोहावली' से हो जाता है, जैसे—

दोहा—कीन्ही अर्ज विभीषणै, लंक दई भगवान ।
ये दोनों बाहर रहे, सीता पुहुप विमान ॥

और भी प्रायः यही आशय हनुमन्नाटक में कहा है और अर्थ स्पष्ट ही है यथा—

श्लोक—या विभूतिर्दशग्रीवे शिरच्छेदेपि शंकरात् ।
दर्शनाद्राम देवस्य साविभूति र्विभीषणे ॥

चौ०—अस †प्रभु छाँड़ि भजहिं जे आना । ते नर पशु बिन पूँछ विषाना ॥
निज जन जानि ताहि अपनावा । *प्रभु सुभाव कपिकुल मन भावा ॥

अर्थ—ऐसे परमेश्वर को छोड़ कर जो लोग दूसरे का भजन करते हैं सो मानो बिना पूँछ और सींग के पशु हैं (अर्थात् मनुष्य हो करके भी पशु के तुल्य हैं) (रामचन्द्र जी ने विभीषण को) अपना भक्त जान शरण में ले लिया, प्रभु का यह स्वभाव सब वानरों को सुहावना लगा ॥

चौ०—पुनि सर्वज्ञ सर्व उर वासी । सर्व रूप सब रहित उदासी ॥
बोले वचन नीतिप्रतिपालक । कारण मनुज दनुज कुलघालक ॥

अर्थ—फिर सब जाननेवाले और सब के हृदय में निवास करने हारे, सब में व्याप्त, सब से अलग और उदासीन नीति के पालने वाले (प्रभु) यह वचन बोले कारण वे राक्षसों के कुल के नाश करने के हेतु मनुष्य रूप धारण करते हैं ॥

चौ०—सुनु कपीश लंकापतिवीरा । केहि विधि उतरिय जलधि गँभीरा ॥
संकुल उरग मकर झष जाती । अति अगाध दुस्तर सब भांती ॥

---

† अस प्रभु छाँड़ि भजहिं जे आना । ते नर पशु बिन पूँछ विषाना—कहा है तुलसीदास जी ने

दोहा—पशू गढ़ंते नर भयो, भूले सींग रु पूँछ ।
तुलसी हरि की भक्ति बिन, धिक दाढ़ी अरु मूछ ॥

और भी

सवैया—देखत के नर दीखत हैं पर लक्षण तो पशु के सब ही हैं ।
बोलत चालत पीवत खात सु वे घर वे बन जात सही हैं ॥
प्रात गये रजनी फिर आवत 'सुन्दर' यों नित भारवही हैं ।
और तो लक्षण आय मिले सब एक कमी शिर सींग नहीं हैं ॥

* प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा—गीतावली रामायण से—

भजन—नाहिन भजिबे योग बियो ।

श्री रघुवीर समान आन को पूरण कृपा हियो ॥
कहौ कौन सुर शिला तारि पुनि केवट मीत कियो ।
कौने गीध अधम को पितु ज्यों निज कर पिंड दियो ॥
कौन देव शबरी के फल करि भोजन सलिल पियो ।
बालि त्रास वारिधि बूड़त कपि केहि गहि बाँह लियो ॥
भजन प्रभाव विभीषण भाष्यो सुनि कपि कटक जियो ।
'तुलसिदास' को प्रभु कौशलपति सब प्रकार बरियो ॥

अर्थ—हे सुग्रीव! हे लंका के राजा विभीषण और हे योद्धाओ सुनो! इस गहरे समुद्र से पैले पार किस प्रकार चलैं जिस में सर्प मगर और अनेक जाति की मछलियां भरी पड़ीं हैं और बहुत गहरा होने से भी सब प्रकार पार जाने के योग्य नहीं है ॥

चौ०—कह लंकेश सुनहुँ रघुनायक। कोटि सिंधु शोषक तव सायक ॥
यद्यपि तदपि नीति अस गाई। विनय करिय सागर सन जाई ॥

अर्थ—विभीषण बोले हे रामचन्द्रजी! सुनिये, आप का वाण करोड़ों समुद्रों को सोख सक्ता है। ऐसा होने पर भी नीति तो यह है कि जाकर समुद्र से विनय कीजिये ॥

दोहा—प्रभु तुम्हार* कुलगुरु जलधि, कहहि उपाय विचारि।
विनु प्रयास सागर तरहिं, सकल भालु कपि झारि ॥५०॥

अर्थ—हे स्वामी! समुद्र आप का कुलगुरु है वह सोच कर कुछ उपाय बतावेगा जिस से सम्पूर्ण रीछ और वानरों की सेना विना अड़चन समुद्र के पार हो जावेगी ॥

चौ०—सखा कह्यो तुम नीक उपाई। करिय दैव जो होइ सहाई ॥
मंत्र न यह लक्ष्मण मन भावा। राम वचन सुनि अति दुख पावा ॥

अर्थ—हे मित्र! तुम ने अच्छा उपाय बताया जो दैव सहायता करैगा तो ऐसा ही करैंगे। यह सलाह लक्ष्मण को अच्छी न लगी, वे रामचन्द्र जी के वचन सुन कर दुःखित हुए ॥ (जैसा कि आगे कहा है)—

चौ०—नाथ दैव कर कवन भरोसा! शोषिय सिंधु करिय मन रोसा ॥
कादर मन कर एक अधारा। दैव† दैव आलसी पुकारा ॥

---

* कुलगुरु जलधि—कुलगुरु कहने में इतना ही अभिप्राय है कि सूर्यवंशी सगर राजा के ६०००० पुत्रों ने पृथ्वी को खोद कर समुद्र को गम्भीरता और विस्तार दिया था इसी से यह सगर के वंश में होकर श्री रामचन्द्र जी के जेठे बड़ों में समझा गया, विस्तार पूर्वक कथा इसी कांड के पृ०६ की टिप्पणी में मिलेगी ॥

† दैव दैव आलसी पुकारा—जैसा कहा है

दोहा—पुरुष सिंह जो उद्यमी, लक्ष्मी ताकी चेरि।
भाग्य भरोसे जे रहैं, कुपुरुष भाषहिं टेरि ॥ १ ॥
भाग्य भरोसो मंदकरि, कर पौरुष तजि रोष।
यत्न करे जो ना मिले, ताउ करै निर्दोष ॥ २ ॥

अर्थ—हे प्रभु ! दैव का क्या भरोसा है, आप मन में क्रोधकर समुद्र को सुखा डालिये। जिस का मन डरने वाला है उस को यही आधार है कि वह आलसी बनकर दैव दैव कहा करता है ॥

चौ०—सुनत विहँसि बोले रघुवीरा। ऐसेइ करव धरहु मन धीरा॥
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गये रघुराई॥

अर्थ—सुनते ही रामचन्द्र जी हँसकर कहने लगे मन में धीरज तौ धरौ ऐसा ही करूँगा। इतना कह रामचन्द्र जी ने अपने भाई को समझाया और फिर वे समुद्र के समीप जा पहुँचे ॥

चौ०—प्रथम प्रणाम कीन्ह प्रभु जाई। बैठे तट पुनि दर्भ डसाई॥
जबहिं विभीषण प्रभु पहँआये। पाछे रावण दूत पठाये॥

अर्थ—प्रभु ने पहिले तो प्रणाम जा किया और फिर कुशासन, बिछाय बैठ गये। जब (लंका से) विभीषण रामचन्द्रजी के पास आये थे, तब ही रावण ने उन के पीछे अपने दूत भेज दिये थे।

दोहा—सकल चरित तिन्ह देखेउ, धरे कपट कपि देह।
प्रभु गुण हृदय सराहि अति, शरणागत पर नेह॥५॥

अर्थ—दूतों ने बनावटी बन्दर का रूप धारण कर सब हाल देख लिया, वे मन ही मन रामचन्द्र जी के गुणों की बड़ाई करने लगे कि इन का प्रेम शरण में आये प्राणी पर रहता है ॥

चौ०—प्रगट बखानत राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। ताहि बांधि कपि पति पहँ आने॥

अर्थ—रामचन्द्र जी का स्वभाव स्पष्टरूप से वर्णन करने लगे, तौ प्रेम के मारे कपट भूल गये (अर्थात् बानरी रूप त्याग राक्षस के राक्षस बन गये) तब तो वानरों ने जान लिया कि ये वैरी के दूत हैं इस हेतु वे उन्हें बाँधकर सुग्रीव के पास ले गये ॥

चौ०—कह सुग्रीव सुनहु सब बनचर। अंग भंग करि पठवहु निशिचर॥
सुनि सुग्रीव वचन कपि धाये। बाँधि कटक चहुँ पास फिराये॥

अर्थ—सुग्रीव कहने लगे कि हे सब वानरो सुनो, इन राक्षसों का कोई भी अङ्गहीन कर छोड़ दो (अर्थात् इन का हाथ या पांव या नाक या कान काट

कर जाने दो) सुग्रीव का कहना सुनते ही वानर दौड़ पड़े और उन्हों ने इन को बांध सेना के चारों ओर फिराया ॥

चौ०—बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे ॥
जो हमार हर नासा काना। तेहि कौशलाधीश कर आना ॥

अर्थ—वानर नाना प्रकार से उन्हें मारते थे, यद्यपि वे दीनता से चिल्लाते थे तौ भी उन्हें छोड़ा नहीं (निदान वे कहने लगे) जो हमारे नाक कान काटै, उन्हें रामचन्द्र जी की सौगन्ध है ॥

चौ०—सुनि लक्ष्मण तेहि निकट बुलाये। दया लागि हँसि दीन्ह छुड़ाये ॥
रावण कर दीन्हेहु यह पाती। लक्ष्मण बचन बांचु कुलघाती ॥

अर्थ—यह सुन लक्ष्मण जी ने उन्हे अपने पास बुलवाया उन्हें दया आगई इस हेतु हँसकर उन्हें छुड़वा दिया (और कहा कि) रावण के हाथ में यह चिट्ठी देना और कहना रे कुल नाशक ! लक्ष्मण का लेख तौ बाँच ॥

दोहा—कहेहु मुखागर मूढ़सन, मम संदेश उदार।
सीता देई मिलहु नतु, आवा काल तुम्हार ॥ ५२ ॥

अर्थ—और उस मूर्ख से मेरा हितकारी संदेशा भी कह देना कि सीता जी को लौटा कर राम से मिलौ नहीं तो तुम्हारी मृत्यु आन पहुंची ॥

चौ०—तुरत नाय लक्ष्मण पद माथा। चले दूत वर्णत गुण गाथा ॥
कहत राम यश लंका आये। रावण चरण शीस तिन्ह नाये ॥

अर्थ जल्दी से लक्ष्मण के चरणों पर शिर नवा कर दोनों दूत उन के गुणानुवाद गाते हुए लौटे। वे रामचन्द्र जी की कीर्त्ति का वर्णन करते हुए लंका में पहुंचे, वहां पर उन्हों ने रावण के चरणों पर शिर धर के प्रणाम किया ॥

चौ०—विहँसि दशानन पूछेसि बाता। कहसि न शुक आपनि कुशलाता ॥
पुनि कहु खबर विभीषण केरी। जासु मृत्यु आई अति नेरी ॥

अर्थ—रावण ने हँसकर यह प्रश्न पूछा कि रे शुक ! तू अपना हाल क्यों नहीं बतलाता और विभीषण का भी समाचार कहो, उस की मौत तौ बहुत ही समीप आ पहुँची है ॥

चौ०—करत राज लंका शठ त्यागा। होइहि यवकर कीट अभागा ॥
पुनि कह भालु कीश कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई ॥

अर्थ—उस मूर्ख ने लंका का राज्य करना छोड़ दिया, वह भाग्यहीन अब जौ का घुन बनेगा (अर्थात् जिस प्रकार अनाज के साथ घुन भी पिस जाता है उसी प्रकार वह भी रीछ और वानरों के साथ प्राण खोवेगा) रीछ और बंदरों की सेना का हाल कहो, जो कठिन यम के फेर में पड़कर यहां आई है ॥

चौ०—जिनके जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बेचारा॥
कहु तपसिन्ह कर बात बहोरी। जिन के हृदय त्रास अति मोरी॥

अर्थ—जिन के प्राणों का बचाने वाला बेचारा दयालु समुद्र हो गया (अर्थात् यदि बीच में समुद्र न होता तौ राक्षसगण अभी तक उन्हें खा गये होते)। फिर भी दोनों तपस्वियों की वार्ता सुनाओ जिन के चित्त में मेरा भारी भय है ॥

दोहा—की भइभेट कि फिर गये, श्रवण सुयश सुनि मोर।
कहसि न रिपुदल तेज बल, कस चकित चित तोर॥ ५३॥

अर्थ—क्या तुम्हारी भेट हुई अथवा वे मेरा यश सुनते ही लौट तो नहीं गये। तू वैरी की सेना का प्रताप और बल भी नहीं बतलाता। तेरा चित्त कैसा अकचकाना सा हो रहा है ॥

चौ०—नाथ कृपा करि पूछेहु जैसे। मानहु कहा क्रोध तजि तैसे॥
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहि राम तिलक तेहि सारा॥

अर्थ—हे स्वामी! जिस प्रकार आपने दयालुता से पूछा है उसी प्रकार क्रोध को छोड़ मेरे वचनों को मानिये। जब आप का भाई राम से जा मिला, मिलते ही राम ने उसे तिलक कर दिया (अर्थात् लंका का राजा बना दिया)॥

चौ०—रावण दूत हमहिं सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हेउ दुखनाना॥
श्रवण नासिका काटन लागे। राम शपथ दीन्हीं हम त्यागे॥

अर्थ—बन्दरों ने जब सुना कि हम आप के दूत हैं तब तो उन्हों ने बांध कर हमें अनेक कष्ट दिये और हमारे नाक कान भी काटना चाहते थे परन्तु जब हमने रामचन्द्र जी की सौगन्ध दिलाई तब उन्हों ने हमें छोड़ दिया ॥

चौ०—पूछेहु नाथ कीश कटकाई। वदन कोटि शत वरणि न जाई॥
नाना वरण भालु कपि धारी। विकटानन विशाल भयकारी॥

अर्थ—हे प्रभु! आप ने बन्दरों की सेना का हाल पूछा सो तौ वह सौकरोड़

मुख से भी नहीं वर्णन किया जा सक्ता। रीछ, बन्दरों के झुण्ड अनेक रंग के हैं, उन के विकट मुँह हैं और वे बड़े भयङ्कर हैं॥

चौ०—जेइ पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महँतेहि *बलथोरा॥
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल विपुल विशाला॥

अर्थ—जिस ने लंका जलाई और आप के पुत्र को मार डाला उस का बल तौ सब बंदरों से थोड़ा है। अनेक नामों के योद्धा बड़े ही बलवान् हैं और उन में अनगिनती हाथियों के बराबर बड़ा भारी बल है॥

दो०—द्विविद मयंदरु नील नल, अंगदादि विकटाशि।
दधि मुख केहरि कुमुद गव, जामवंत बल राशि॥ ५४॥

अर्थ—जैसे द्विविद, मयंद, नील, नल, अङ्गद, विकटाशी, दधि मुख केहरि कुमुद, गव और जामवंत ये बड़े ही बलवान् हैं॥

चौ०—ये कपि सब सुग्रीव समाना। इन सम कोटिन गनै को आना॥
रामकृपाअतुलितबलतिनहीं। तृण समान त्रय लोकहि गिनहीं॥

अर्थ—ये कपि सब सुग्रीव के बराबरी के हैं और भी करोड़ों इन के समान हैं जिन की गिनती नहीं हो सक्ती। रामचन्द्र जी की कृपा से उन के बल का पारावार नहीं, वे तीनों लोकों को तिनका के तुल्य समझते हैं॥

---

* सकल कपिन्ह महँ तेहि बल थोरा—इस में यह शंका होती है कि हनुमान् जी तो सब में बलवान् थे उन्हें सब बंदरों में थोड़ा बलवान् कैसे कहा उस का समाधान यह है कि कटक के प्रायः सब बंदरों को शुक ने ऐसी अवस्था में देखा था कि—

'परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥
शोषहिं सिंधु सहित झष व्याला। पूरहिं नतु भरि कुधर विशाला।
मर्दि गर्दि मिलवहिं दश शीशा। ऐसे वचन कहहिं सब कीशा॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज अशंका। मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका।

परन्तु हनुमान् को इस ने रामचन्द्र जी के समीप शांत रूप से सेवा में तत्पर देखा था इस हेतु अनुमान किया कि हनुमान् का बल औरों की अपेक्षा थोड़ा है।

इस के सिवाय दूत ने अपनी चतुराई से यह दरशाया कि रावण इसके सुनते ही घबड़ा जायगा क्योंकि हनुमान् के तेज, बल, प्रताप को वह देख चुका था इसहेतु उसे छोटा बतलाकर बाकी सेना का प्रभाव विशेष बढ़ाकर दिखाया॥

चौ०—अस मैं श्रवण सुना दशकंधर । *पद्म अठारह यूथप बंदर ॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं । जो न तुमहिं जीतै रण माहीं ॥

अर्थ—हे रावण ! मेरे कानों में ऐसी ध्वनि पड़ी, कि सब बन्दरों की संख्या अठारह पद्म है ! हे प्रभु ! उस दल में ऐसा कोई भी बन्दर नहीं, जो तुम्हें लड़ाई में न जीत सके (अर्थात् हर एक बंदर आप को हरा सक्ता है) ॥

चौ०—परम क्रोध मीजहिं सब हाथा । आयसु पै न देहिं रघुनाथा ॥
शोषहिं सिंधु सहित झष व्याला । पूरहिं नतु भरि कुधर विशाला ॥

अर्थ—सब के सब बड़े क्रोध से हाथ मल रहे हैं परन्तु रामचन्द्र जी ने अभी उन्हें आज्ञा नहीं दी । वे या तो समुद्र को मछली सर्प आदि जीवों समेत पी लेना चाहते हैं या बड़े २ पर्वतों से उसे पूर देना चाहते हैं ॥

चौ०—मर्दि गर्दि मिलवहिं दशशीशा । ऐसे वचन कहहिं सब कीशा ॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज अशंका । मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका ॥

अर्थ—सब बंदर यों कह रहे हैं कि रावण को मिथलकर धूल में मिला दो । वे स्वभाव ही से निधड़क गर्जते हैं और बल बतलाते हैं । मानो लंका ही को लीलना चाहते हों ॥

दो०—सहज शूर कपि भालु सब, पुनि शिर पर श्री राम ।
रावण कोटिक काल कहँ, जीति सकहिं संग्राम ॥ ५५ ॥

अर्थ—हे रावण ! सब रीछ और बन्दर स्वभाव ही से बलवान् हैं । तिस पर भी उन के मुखिया श्री रामचन्द्र जी हैं, वे करोड़ों काल को लड़ाई में जीत सक्ते हैं ॥ (दूसरी लकीर का दूसरा अर्थ)-वे करोड़ों कालरूपी रावणों को भी लड़ाई में जीत सक्ते हैं ॥

चौ०—राम तेज बल बुधि विपुलाई । शेष सहस शत सकहिं न गाई ॥
सक शर एक शोषि शत सागर । तव भ्रातहिं पूछेउ नय नागर ॥

---

* पद्म अठारह—गणित की पुस्तकों में दहाने का क्रम करोड़ के ऊपर कभी कभी कुछ उलट पुलट करके लिखते हैं इस हेतु साधारण दहाई करने का नियम लिखा जाता है जैसे—इकाई, दहाई, सैकड़ा, हज़ार, दश हज़ार, लाख, दश लाख, करोड़, दश करोड़, अर्ब, दश अर्ब, खर्ब, दश खर्ब, नील, दश नील, पद्म, दश पद्म, इस प्रमाण से १८ पदम यों लिखे जायँगे १८०००००००००००००००

अर्थ—रामचन्द्र जी के प्रताप, बल और बुद्धि की अधिकता को तो एक लाख शेषनाग भी वर्णन नहीं कर सक्ते। उन का एकही बाण सौ समुद्र को सुखा सक्ता है परन्तु नीतिनिपुण रामचन्द्र जी ने तुम्हारे भाई से पूछा ॥

चौ०—तासु वचन सुनि सागर पाहीं। मांगत पंथ कृपा मन माहीं॥
सुनत वचन विहँसा दशशीशा। जो अस मति सहाय कृत कीशा॥

अर्थ—वे उस के वचन सुन समुद्र से रास्ता मांग रहे हैं क्योंकि उन के हृदय में दया है। इन वचनों को सुनते ही रावण हँस पड़ा और कहने लगा जब ऐसी बुद्धि है तभी तो बन्दरों को सहायक बनाया है ॥

चौ०—सहज भीरु कर वचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥

अर्थ—जो स्वभाव ही से डरपोक है ऐसे विभीषण की बातों में लगकर, समुद्र से झगड़ा लगाया है। (दूसरा अर्थ)—स्वभाव ही से डरनेवाले जो राम सो बातों से बड़ाई मार रहे हैं, (देखो तो वे) समुद्र से बालक की सी हठ किये बैठे हैं। रे मूर्ख! क्यों झूठी बड़ाई करता है. मैं ने बैरी के बल और बुद्धि की थाह पा ली ॥

चौ०—सचिव सभीत विभीषण जा के। विजय विभूति कहां लगि ता के॥
सुनि खल वचन दूत रिस बाढ़ी। समय विचारि पत्रिका काढ़ी॥

अर्थ—विभीषण सरीखे डरने वाले जिस के मंत्री हैं, उसे लड़ाई जीतने का यश कहां से मिल सक्ता है। उस दुष्ट के वचनों को सुन कर दूत का क्रोध बढ़ गया, उस ने यह अच्छा अवसर जान चिट्ठी निकाली ॥

चौ०—राम अनुज दीन्हीं यह पाती। नाथ बँचाइ जुड़ावहु छाती॥
विहँसि *वाम कर लीन्हेसि रावन। †सचिव बोलि शठ लाग बचावन॥

---

* वाम कर—डेरे हाथ में पाती का लेना निरादर का सूचक है. रावण ने अपनी समझ में उस पाती को तुच्छ समझा

† सचिव बोलि शठ लाग बचावन-पत्री का आशय और मुखाग्र सन्देशा जिसे तुलसीदास जी ने कुछ लक्ष्मण जी से और कुछ यहाँ मन्त्री द्वारा बचवा कर कहलवाया है सो एकत्र नीचे लिखी कविता में दिया है. यथा--

क०--स्वस्ति श्री चतुर दशवदन सुरारि योग पहुँचे लषन लेख जे श्री कौशलेश की।
इत है कुशल उत मंगल चहौ तो आय पाँय परि लाय देहु सुता मिथिलेश की॥
'रसिक बिहारी, अपराध सब ह्वै हैं छमा दीन देखि दीन्हीं सीख पत्री या सुदेश की।
नतरु कदब साज सहित कुटुम्ब राज नाश तुव होत बात जात है हमेश की॥

अर्थ—रामचन्द्र के छोटे भाई ने यह चिट्ठी दी है, सो हे स्वामी! इस को बचवाकर आप अपने हृदय को शांति करें। रावण ने हँसकर चिट्ठी डेरे हाथ में ले ली और मंत्री को बुलाकर वह मूर्ख उसे बचवाने लगा॥

दो०—बातन्ह मनहिं रिझाय शठ, जनि घालसि कुल खीश।
*राम विरोध न उबरिहहु, शरण विष्णु अज ईश॥

अर्थ—(चिट्ठीमें यह लिखा था कि) रे मूर्ख! बातों से अपने चित्त को समझा कर अपने वंश का नाश मत कर, रामचन्द्र जी से वैर करके विष्णु, ब्रह्मा और शिव किसी की शरण लेने से नहीं बचोगे (अर्थात् राम के वैरी को न ब्रह्मा न विष्णु और न शिव अपनी शरण में लेते हैं)॥

दो०—तजि अभिमानहि अनुज इव, प्रभुपदपंकजभृंग।
होहि राम शर अनल खल, जनि कुलसहित पतंग॥ ५३॥

अर्थ—तू अपने भाई (विभीषण) की नाईं घमण्ड को छोड़ श्री रामचन्द्र जी के कमलस्वरूपी चरणों में भौंरे की भांति जा लग, रे मूर्ख! तू अपने कुल समेत श्री रामचन्द्र जी के अग्निरूपी बाण से भुनगे की नाईं मत भुँज (अर्थात् तू अपने भाई की नाईं राम जी की शरण गह नहीं तो वंश समेत तू उन के बाण से मारा जायगा)॥

चौ० सुनत सभय मन महँ मुसुकाई। कहत दशानन सबहि सुनाई॥

---

* राम विरोध न उबरिहहु, शरण विष्णु अज ईश—जैसा कि नीचे लिखे श्लोक से स्पष्ट होता है—

श्लोक—ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा, रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा, त्रातुं न शक्यो युधि रामवध्यम्॥

(इस श्लोक में कवि का पांडित्य देखिये, उसने ब्रह्मा, शिवजी तथा इन्द्र इन तीन बड़े देवताओं को समयानुसारी उत्तम विशेषणों से तीन २ बार कह कर श्री रामचन्द्र जी का सामर्थ्य विशेषता पूर्वक प्रदर्शित किया है सो यों कि) अर्थात् साक्षात् ब्रह्मा, जो आप ही से उत्पन्न हुए और जो चार मुँह वाले हैं इसी प्रकार (२) रुद्र भी, जो तीन नेत्रवाले हैं तथा त्रिपुर राक्षस के बध करने वाले हैं और ऐसे ही (३) इन्द्र, जो महाइन्द्र कहलाते हैं तथा देवताओं के स्वामी हैं ऐसे २ पराक्रमी भी उस प्राणी को नहीं बचा सके जिसे श्री रामचन्द्र जी युद्ध में मार डालना चाहते हों।

*भूमि परा कर गहत अकासा । लघु तापस कर वाग विलासा ॥

अर्थ—पत्र सुनते ही रावण मन में तो भयभीत हुआ परन्तु मुसुकराकर सब को सुनाने के हेतु यों कहने लगा । अरे ! छोटे तपस्वी की वचन-चातुरी तो देखो, वह तो ऐसा उपाय कर रहा है जैसा कि पृथ्वी पर पड़ा हुआ कोई मनुष्य आकाश को छूना चाहै (अर्थात् छोटे मुँह बड़ी बात कर रहा है) ॥

चौ०—कह शुक नाथ सत्य सब बानी । समझहु छाँड़ि प्रकृति अभिमानी ॥
सुनहु वचन मम परिहरि क्रोधा । नाथ राम सन तजहु विरोधा ॥

अर्थ—शुक कहने लगा हे स्वामी ! पत्री की बातें सब सही हैं, आप अपनी अहङ्कारी प्रकृति को छोड़ कर ठीक २ विचार करो । हे प्रभु ! क्रोध को त्याग मेरा कहना मानिये और रामचन्द्र जी से बैर त्यागिये ॥

चौ०—अति कोमल रघुवीर सुभाऊ । यद्यपि अखिललोक कर राऊ ॥
मिलत कृपा प्रभु तुम पर करि हैं । उर अपराध न एकौ धरि हैं ॥

अर्थ—रामचन्द्र जी यद्यपि सब संसार के स्वामी हैं तौ भी उन का स्वभाव बहुत ही कोमल है । जो तुम उन से मिलौगे तौ वे तुम्हारे ऊपर कृपा करैंगे और तुम्हारा एक भी अपराध अपने हृदय में न धरैंगे ॥

चौ०—जनकसुता रघुनाथहि दीजै । इतना कहा मोर प्रभु कीजै ॥
जब तेइ देन कहेउ वैदेही । चरण प्रहार कीन्ह शठ तेही ॥

अर्थ—हे प्रभु ! मेरा इतना कहना मान लीजिये कि जानकी जी रामचन्द्रजी को सौंप दीजिये । ज्योंहीं उस ने जानकी जी के लौटाने की बात कही त्योंहीं उस मूर्ख ने उसे लात मारी ॥

चौ० चरण नाइ शिर चला सो तहँवा । कृपासिंधु रघुनायक जहँवा ॥
करि प्रणाम निज कथा सुनाई । रामकृपा आपनि गति पाई ॥

---

* भूमि परा कर गहत अकासा । लघु तापस कर वाग विलासा—'रस रहस्य' भाषा ग्रन्थ से

स०—साँझ रु भोर उठाय भुजा, लखि छाँह गुमान हिये सु बढ्यो ।
जग हौं ही बड़ो सब तें यह जान, रहै निशिवासर मोद मढ्यो ॥
दौरत गाय के पाय मैं डूब, गयो सु बड़ाई को पोत कढ्यो ।
बहुर्यौं छुटि के सगरे जग मैं सु, बिरावत वामन ऊंट चढ्यो ॥

अर्थ—वह रावण के चरणों पर शिर नवा कर वहां गया जहां कि दया-सागर रामचन्द्र जी थे। उन को प्रणाम कर उस ने अपना सब हाल कह सुनाया और श्री रामचन्द्र जी की कृपा से वह अपनी गति को प्राप्त हुआ ॥

चौ०—*ऋषि अगस्त्य कर शाप भवानी। राक्षस भयउ रहा मुनि ज्ञानी॥
बंदि रामपद बारहिंबारा। मुनि निज आश्रम कहँ पग धारा॥

अर्थ—महादेव जी कहने लगे कि हे पार्वती! यह शुक कोई ज्ञानवान् मुनि था, वह अगस्त्य ऋषि के श्राप से राक्षस हो गया था। सो मुनि बारम्बार श्री रामचन्द्र जी के चरणों में शिर नवाकर अपने आश्रम को चला गया॥

दो०—†विनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीति॥
बोले राम सकोप तब, भय बिन होइ न प्रीति॥ ५७॥

अर्थ—तीन दिन व्यतीत हो चुके परन्तु मूर्ख समुद्र ने प्रार्थना न सुनी तब तो रामचन्द्र जी क्रोधित हो कहने लगे कि भय के बिना प्रीति नहीं होती॥

---

* ऋषि अगस्त्य कर शाप भवानी—शुक पहिले ब्रह्म विचार में तत्पर ब्राह्मण था वह वानप्रस्थ आश्रम में रहता हुआ देवताओं और ब्राह्मणों की वृद्धि तथा राक्षसों के नाश के निमित्त यज्ञ किया करता था इस हेतु वज्रदंष्ट्र नाम के राक्षस ने इस से पलटा लेना चाहा. वह इस ब्राह्मण की स्त्री का रूप धारण कर आश्रम में आये हुए अगस्त्य ऋषि को मनुष्यों का मांस बना कर खिलाना चाहता था. अगस्त्य जी ने नर मांस को साम्हने परोसा हुआ देख क्रोधित हो, ब्राह्मण को श्राप दिया कि तुम नर मांसाहारी राक्षस हो. ब्राह्मण को वज्रदंष्ट्र का कपट मालूम न था. इस से ऋषि जी से प्रार्थना की कि मैं निरपराधी हूं ऋषि जी ने ध्यान से सब गुप्त भेद समझ लिया और कहा कि अरे! धोखा हुआ परन्तु तुम शुक नाम के राक्षस हो रावण की सेवा में रहोगे. त्रेता के अन्त में जब तुम रामचन्द्र जी के पास दूत कर्म में भेजे जाओगे तभी तुम श्राप से मुक्त होगे. निदान ऐसा ही हुआ और शुक फिर ब्राह्मण का ब्राह्मण हो वानप्रस्थ आश्रम में ईश्वर के भजन में लीन हुआ। सविस्तर कथा अध्यात्म रामायण युद्ध काण्ड के पाँचवें सर्ग में मिलेगी।

† विनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीति—इस में कोई २ लोग यह शंका करते हैं कि समुद्र ने हनुमान् जी की सहायता करने के हेतु मैनाक पर्वत को उभाड़ा था. जैसा कह आये हैं कि 'जलनिधि रघुपति दूत विचारी, कह मैनाक होहु श्रम हारी' और यहां पर स्वतः श्रीरामचन्द्र जी की विनय पर ध्यान न दिया सो क्यों? इस का समाधान यह है कि समुद्र ने सहायता के बहाने से हनुमान् जी की परीक्षा की (जैसा कि सुरसा के द्वारा देवताओं ने भी रामदूत

(और भी)

चौ० लक्ष्मण बाण शरासन आनू। शोषौं वारिधि विशिख कृशानू

अर्थ—हे लक्ष्मण! मेरा धनुष बाण तो लाओ कि मैं समुद्र को बाण की अग्नि से सुखा डालूँ ॥

चौ०—शठ सन विनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपण सन सुन्दर नीती॥
ममतारत सन ज्ञान कहानी। अति लोभी सन विरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बये फल यथा॥

अर्थ—देखो, मूर्ख से विनती करना, छलिया से प्रेम और स्वभाव ही से कंजूस को उत्तम नीति का सिखाना। मोह में फँसे हुए प्राणी से ज्ञान की चर्चा और लालची से वैराग्य का वर्णन। क्रोधी मनुष्य को शांति और विषयी को ईश्वर की कथा ये सब इस प्रकार निष्फल होते हैं जिस प्रकार ऊसर भूमि में बीज का बोना बे काम हो जाता ॥

की जाँच की थी), जिस से स्पष्ट होगया कि ये आसरा नहीं चाहते और नीतिवान् तथा बलवान् भी हैं, क्योंकि हनुमान् जी मैनाक पर्वत पर ठहरे नहीं, उन्हों ने अपने मार्ग का बाधक समझ उस की एक चोटी उखाड़ डाली और फिर उस की विनय सुन, उसे प्रणाम कर यह कहकर चले गये 'राम काज कीन्हें बिना मोहि कहां विश्राम'। इसी प्रकार जब तक साधारण मनुष्य की नाईं श्री रामचन्द्र जी विनय करते रहे तब तक समुद्र ने कुछ ध्यान न दिया, कहा है अध्यात्म रामायण में—

श्लोक—जानाति मानुषोऽयं मे, किं करिष्यति वानरैः।
अद्य पश्य महाबाहो, शोषयिष्यामि वारिधिम्॥

अर्थात् (श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण से कहने लगे कि) समुद्र मुझे मनुष्य ही समझता है और सोचता है कि ये बंदरों की सहायता से मेरा क्या कर सकेंगे। हे लक्ष्मण! तुम देखो मैं अभी इस समुद्र को सुखाये डालता हूं॥

इतना कह कर ज्योंहीं उन्हें ने बाण संधाना त्योंहीं समुद्र में खलबली पड़ गई। तब उन के प्रताप को जान, उन्हें परमेश्वर मान उन की भी सहायता करने को तैयार हो गया और प्रसन्न हुआ, जैसा कि कहा है 'देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी'

'सुखारी' इसहेतु कि उस ने युक्ति प्रयुक्ति से राम बाण द्वारा अपने उत्तर तटवासी राक्षसों के नाश करवाने का उत्तम अवसर पा लिया॥

चौ० अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा । यह मत लक्ष्मण के मन भावा॥
संधानेउ धनु विशिख कराला । उठी उदधि उर अंतर ज्वाला ॥

अर्थ—ऐसा कह रामचन्द्र जी ने धनुष तैयार किया, यह विचार लक्ष्मण जी के चित्त को अच्छा लगा और ज्योंहीं उन्हों ने कठिन बाण अपने धनुष पर चढ़ाया, त्योंहीं तुरन्त समुद्र के भीतर जलन उठी ॥

चौ०—मकर उरग झष गण अकुलाने । जरत जंतु जलनिधि जब जाने ॥
कनक थार भरि मणि गण नाना । *विप्र रूप आयउ तजि माना ॥

अर्थ—मगर, सर्प और मछलियां सब घबड़ा उठीं और जब जलधि जान गया कि सब जल जंतु जले जाते हैं । तब वह सोने के थार में भांति २ के रत्न भर कर तथा ब्राह्मण का रूप धरके, अहङ्कार को त्याग उपस्थित हुआ ॥

दो० †काटेहि पै कदली फरै, कोटि यतन कोउ सींच ।
विनय न मान खगेश सुनु, डाँटेहि पै नम नीच ॥ ५८ ॥

अर्थ—चाहे कोई करोड़ों उपाय कर क्यों न सींचे, केले का वृक्ष जड़ काटने से जमता है, हे गरुड़ जी ! सुनो, नीच मनुष्य विनती नहीं मानता वह तौ धमकाने से दबता है ॥

चौ० सभय सिन्धु गहि पद प्रभु केरे । क्षमहु नाथ सब अवगुण मेरे ॥
गगन समीर अनल जल धरनी । इन की नाथ सहज जड़ करनी ॥

---

* विप्र रूप आयउ तजि माना—यहां पर कोई २ यह प्रश्न कर बैठते हैं कि समुद्र ने विप्ररूप क्यों धारण किया ? इस का उत्तर प्रायः वही है जो हनुमान् जी के विप्ररूप धारण करने का था और जिस का हाल किष्किन्धा काण्ड की टीका में लिख आये हैं ॥

† काटेहि पै कदली फरै—कवि कुल शिरोमणि कालिदास कृत कुमार संभव के दूसरे सर्ग से—

श्लोक—इत्थमाराध्य मानोऽपि, क्लिश्नाति भुवनत्रयम् ।
शाम्येत्प्रत्यपकारेण, नोप कारेण दुर्जनः ॥

भाव यह कि तारका सुर देवताओं की सुसेवा से संतुष्ट न हुआ क्योंकि दुर्जन तो डाँटने से ही डरता है, विनय से नहीं ॥

अर्थ—डरते २ समुद्र ने श्री रामचन्द्र जी के चरणों को पकड़ा और कहा हे स्वामी! मेरे अपराधों को भूल जाइये। क्योंकि हे प्रभु! आकाश, वायु, अग्नि पानी और पृथ्वी, इन के कार्य स्वभाव ही से मूर्खता के होते हैं॥

चौ०—तव प्रेरित माया उपजाये। सृष्टि हेतु सब ग्रंथन्हि गाये॥
‡प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भांति रहे सुख लहई॥

अर्थ—सब ग्रन्थों में लिखा है कि संसार के निमित्त माया ने आप ही की प्रेरणा से इन पांचों को बनाया है। आप की आज्ञा जिस को जैसी है, वह उसी प्रकार रहै तौ सुख पावै (नहीं तो नहीं)॥

चौ०—प्रभु भल कीन्ह मोहि शिख दीन्हीं। *मर्यादा पुनि तुम्हरिय कीन्हीं॥
†ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥

‡ प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई—देखो अयोध्या काण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० ३१६ 'रामरजाय' पर

* मर्यादा पुनि तुम्हरिय कीन्हीं—इस कथन में समुद्र ने प्रार्थना करते हुए अपने बचने का उपाय बड़ी युक्ति से सोच कर दरशाया है सो यों—(हनुमन्नाटक महंत रामाजी चतुरदास रतलाम निवासी कृत से)।

छप्पय—पूर्व पितामह सगर आप निश्चय अनुमान्यो।
हु है हमरे गोत्र नृपति दशरथ जग जान्यो॥
हय मरव करि है वहै आज्य आहुति बहु परि हैं।
व्याकुल ह्वै है कमठ शेष किमि धरणी धरि हैं॥
तिन ताप शमन सागर सकल सुरसरि संयुत प्रकट कृत।
थिर थपै तिन्हैं उथपत अबै अनुचित उचित न धीय धृत॥

† ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी—

बहुधा सुनने में आया है कि कोई २ लोग नारी 'ताड़ना की अधिकारी' सुन कर यह शंका कर बैठते हैं कि स्त्री क्या सदैव मारखाने के योग्य है? उनकी यह शंका ही निर्मूल है. विचार से देखा जावे तो उस का अभिप्राय यह है कि गँवार शूद्र और स्त्री सदैव यथा योग्य शासन में रहें और यदि विशेष अपराध करें तो दंड पावें जैसा कि मनुस्मृति के ८ वें अध्याय में कहा है—

श्लोक—भार्या पुत्रश्च दासश्च शिष्यो भ्राता च सोदरः।
प्राप्तापराधास्ताड्याः स्युः रज्ज्वा वेणु दलेनु बा॥ २९९॥

अर्थात् स्त्री, पुत्र, दास किंवा शूद्र, शिष्य और सहोदर (छोटा) भाई यदि इनसे कुछ अपराध हो जावे तो इन की शिक्षा के हेतु रस्सी या बाँस की पतली छड़ी से शासन किया जा सक्ता है। ताड़न कुछ सदैव किसी को नहीं बना रहता क्या ढोल को कोई दिन रात पीटा ही करता है"

अर्थ—आप ने अच्छा किया जो मुझे सीख लगा दी परन्तु मर्यादा तौ आप ही को बनाई हुई है। ढोल, गँवार, शूद्र, ढोर और स्त्री इन्हें ताड़ना ही उपयोगी होती है ॥

चौ०—प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरहि कटक न मोरि बड़ाई ॥
प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई। करहु वेगि जो तुमहि सुहाई ॥

अर्थ—आप के प्रभाव से यदि मैं सूख जाऊं और आप की सेना पार चली जावे तौ उस में मेरी कुछ बड़ाई न होगी। वेद में कहा है कि आप की आज्ञा अमिट है, सो अब आप को जो अच्छा लगे वही जल्दी से कीजिये ॥

दो०—सुनतहि वचन विनीत अति, कह कृपालु मुसुकाय।
*जेहि विधि उतरै कपि कटक, तात सो कहहु उपाय ॥५६॥

अर्थ—बहुत ही नम्र वचन सुनते ही कृपालु श्री रामचन्द्र जी मुसुकरा कर कहने लगे, हे प्यारे! तुम वह उपाय बताओ कि जिस से बन्दरों की सेना समुद्र के पार हो जावे ॥

चौ०—नाथ नील नल कपि दोउ भाई। लरिकाईं ऋषि †आशिष पाई ॥
तिन के परस किये गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ॥

---

* जेहि विधि उतरै कपि कटक, तात सो कहहु उपाय—कुंडलिया रामायण से—

कुण्डलिया—नाथ सुगम मारग रच्यो, जल महि पावक पौन।
विटप शैल सर जड़रचे, इन को सिखवत कौन ॥
इन को सिखवत कौन, करहु प्रभु एक उपाई ॥
गिरि गण बाँधहि सेतु, नील नल दोनहुँ भाई ॥
दोनहुँ भाई बाँधि हैं, शैल सकल मर्कट सच्यो।
आप प्रताप सहाय मम, नाथ सुगम मारग रच्यो ॥

† आशिष पाई के आगे ५ लकीरों का एक क्षेपक है, उस में कथा का वर्णन है, सो यों कि—

चौ०—सरिता निकट रहे मुनि छाई। करहिं उपद्रव तहँ दोउ भाई ॥
आँख मूँद मुनि ध्यान लगावैं। तब ये ठाकुर को लै जावैं ॥
सो जल में सब देहिं डुबाई। तब मुनि शाप दियो रिसियाई ॥
वस्तु तुम्हारि छुई जो होई। पानी पै उतरावै सोई ॥
स्थिर रहै चलै सो नाहीं। तब ये कछु समझे मन माहीं ॥

अर्थ—हे स्वामी! नील और नल नाम के दोनों बन्दर, छुटपन में ऋषि जी का आशीर्वाद पा चुके हैं। उन के छूने से भारी २ पर्वत आप के प्रताप के कारण समुद्र में तैरने लगेंगे ॥

चौ०—मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहौं बल अनुमान सहाई ॥
इहि विधि नाथ पयोधि बँधाइय। जेहि यह सुयश लोक तिहुँ गाइय॥

अर्थ—मैं भी हृदय में आप के महत्त्व को धारण कर अपनी शक्ति के अनुसार सहायता करूँगा। हे स्वामी! इस प्रकार आप समुद्र का पुल बँधवाइये जिस से आप की यह कीर्त्ति तीनों लोक के निवासी गाया करें ॥

चौ०—इहि *शर मम उत्तर तटबासी। हतहु नाथ नर खल अघरासी ॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहि हरी राम रणधीरा ॥

अर्थ—और इस (धनुष पर चढ़ाये हुए) बाण से हे स्वामी! उन बड़े पापियों को मार डालिये जो मेरी उत्तर दिशा में निवास करते हैं। रण बांकुरे दयालु रामचन्द्र जी ने यह सुन समुद्र के चित्त के दुःख को दूर किया ॥

चौ०—देखि रामबल पौरुष भारी। हर्षि पयोनिधि भयउ सुखारी ॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरण वंदि पाथोधि सिधावा ॥

अर्थ—समुद्र ने जब श्री रामचन्द्र जी के भारी बल और पराक्रम को देखा, तब तो वह प्रसन्नता के मारे फूला न समाया। समुद्र श्री रघुनाथ जी को सब हाल सुनाकर, तथा उन के चरणों की वंदना करके चला गया ॥

छंद—निज भवन गवनेउ सिंधु श्री रघुपतिहि यह मत भायऊ।
यह चरित कलिमलहरण जस मति दास तुलसी गायऊ ॥
सुख भवन संशय शमन दमन विषाद रघुपतिगुणगना।
तजि आश सकल भरोस गावहिं सुनहिं सज्जन शुचि मना ॥

* इहि शर मम उत्तर तटबासी—समुद्र की उत्तर दिशा में द्रुमकुल्य नाम का एक स्थान है वहाँ पर बहुत से पापी लोग बसते थे जिन से समुद्र को दिनरात दुःख पहुँचता था इसहेतु समुद्र ने, रामचन्द्र जी से प्रार्थना की थी कि आप ने जो धनुष पर बाण चढ़ाया है सो कभी खाली नहीं जायगा इसलिये इन पापी प्राणियों को आप मार डालें। श्री रामचन्द्र जी ने ऐसाही किया और वह बाण उन दुष्टों को मार फिर से तरकश में आ गया। (देखो अध्यात्म रामायण युद्ध काण्ड सर्ग तीसरा) ॥

अर्थ—समुद्र तो अपने घर चला गया, उस की यह सलाह रामचन्द्र जी को अच्छी लगी । कलियुग के पापों के नाश करने वाले इस चरित्र को तुलसीदास जी ने अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन किया है । सुख के स्थान, संदेहों के मिटाने वाले और दुःख के दूर करने वाले श्री रामचन्द्र जी के चरित्रों को, सज्जन प्राणी सम्पूर्ण आशा और भरोसा छोड़ पवित्र मन से कहते और सुनते रहते हैं ॥

दो०-सकल सुमंगल दायकं, रघुनायक गुण गान ।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिंधु बिना जलयान ॥६०॥

अर्थ—सम्पूर्ण मङ्गलों के देने वाले श्री रामचन्द्र जी के गुणानुवादों को जो लोग आदर से सुनेंगे वे इस संसाररूपी समुद्र से बिना ही नौका के पार हो जावेंगे । यही सुन्दर कांड की फल श्रुति टीकाकार कृत सवैया में, यथा—

सवैया—सुन्दर सुन्दरि जानकि सुन्दर, राघव तासु कथा शुभ गाई ।
पाठ करै सो तरै बिन बोहित, सिंधु मुनीन्द्रहु दुस्तर भाई ॥
मूलहु मंत्र जपै इक एक सु, भक्ति समेत महा सुखदाई ।
'नायक' मंगल पावहि श्री रघुनायक होहु सदैव सहाई ॥

दो०—संवत नभ स्वर अंक भू, सित असाढ़ तिथि चारि ।
नायक सुन्दर काण्ड की, टीका रची विचारि ॥

इति श्रीराम चरित मानसे सकल कलिकलुष विध्वंसने ज्ञान सम्पादनो नाम पञ्चमः सोपानः समाप्तः ॥

श्री सीतारामचन्द्रार्पणमस्तु ।

॥ शुभं भूयात् ॥

मोहर

॥ श्री ॥

श्री रामायण सुन्दर काण्ड की श्री विनायकी टीका की पुरौनी

आवश्यक पिंगल ।

मात्रा और गणों का विचार अयोध्या काण्ड अथवा आरण्य काण्ड की श्री विनायकी टीका की पुरौनी में मिलेगा।

१. शार्दूल विक्रीड़ित (वर्णिक छन्द)

इस चार चरण वाले समवृत्त के प्रत्येक चरण में मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और एक गुरु रहता है तथा बारह और सात अक्षरों पर विश्राम होता है ॥

गण स्मरणार्थ नीचे का पद्य खंड उपकारी है (टीकाकार कृत)

'मो से जे सुत तुर्ग भानु सुर हैं, शार्दूल विक्रीड़िते'

भावार्थ—(सूर्यदेव कहतेहैं कि) अश्वरूप धारी सुर्य से उत्पन्न जो पुत्र (अर्थात् अश्विनी कुमार) हैं, वे सिंह के समान पराक्रम से रहते हैं ॥

पिंगलार्थ—म स ज स, त त से गण, ग से गुरु वर्ण, भानु से बारह तथा सुर (स्वर) से सात का बोध होता है (अर्थात् बारह और सात वर्णों पर विश्राम व यति सूचित की है) । अन्तिम शब्द से नाम और सम्पूर्ण पंक्ति शार्दूल विक्रीड़ित छन्द ही में है—

देखो संस्कृत का उदाहरण पृष्ठ १ में और हिन्दी का उदाहरण पृष्ठ दो में—

संस्कृत	म	स	ज	स	त	त	ग
	ऽऽऽ	।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽ
	शान्तंशा	श्वत म	प्रमेय	मनघं	निर्वाण	शांतिप्र	दं
हिन्दी	प्रत्यक्षा	दि प्रमा	ण गम्य	नहिं जो	निर्वाण	दाता प्र	भू

स्मरण रहे कि ऊपर के संस्कृत उदाहरण में छठवाँ अक्षर 'म' तेरहवां अक्षर 'नि' और सत्रहवां अक्षर 'ति' यद्यपि देखने में लघु हैं तौ भी संयुक्त अक्षरों के आदि में होने से दीर्घ माने और पढ़े जावेंगे।

इस वृत्त की हिन्दी कविता का पूरा उदाहरण पृ० दो में देखो ॥

२. वसन्ततिलका (वर्णिक छन्द)

देखौ 'वसंत तिलकै' तभि जी जगैगो

भावार्थ-वसंत ऋतु में तिलक नाम के फूल को जब तुम देखोगे तभी तुम्हारा चित्त प्रसन्न होगा।

पिंगलार्थ-वसंत तिलका छन्द में ऊपर की पंक्ति रची है इस में तगण, भगण, जगण जगण और दो गुरु होते हैं. ये चार लकीरों वाला चौदह अक्षरों का समवृत्त है॥

इसे वसंततिलक, उद्धर्षिणी और सिंहोन्नता भी कहते हैं, देखो संस्कृत का उदाहरण पृ० २ में और हिन्दी का उदाहरण पृ० ३ में

	त	भ	ज	ज	ग ग
संस्कृत	ऽऽ।	ऽ।।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ ऽ
	नान्या स्पृ	हा रघु	पते हृ	दये ऽस्म	दी ये
हिन्दी	इच्छा न	हीं रघु	पती म	न दूजि	मेरे

३. मालिनी (वर्णिक छन्द)

'न नमिय यह दुष्टा मालिनी मंजु बोले'

अर्थ—यह दुष्टा मालिन मधुर शब्दों से 'न नमियं' अर्थात् नम्र न पड़ेगी (इसे तो द्रव्य द्वारा नवाना चाहिये) ये वार्त्ता नर वर गढ़ के बगीचे में ऊदनि और ढेबा के बीच की है.

पिंगलार्थ—न न म य य से गण अर्थात् नगण, नगण, मगण, यगण और यगण सूचित हैं. मालिनी और मंजु मालिनी ये दोनों नाम इस वृत्त के भी सूचित हैं तथा यह लकीर भी मालिनी वृत्त ही में रची गई है सो ऐसे ही पन्द्रह २ अक्षरों के चार चरणों वाला यह समवृत्त समझो, जिस में आठ अक्षरों पर यति है। देखो संस्कृत का उदाहरण पृ० ३ में और हिन्दी का उदाहरण पृ० ४ में—

	न	न	म	य	य
संस्कृत	।।।	।।।	ऽऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ
	अतुलि	त बल	धामं स्व	र्ण शैला	भदेहं
हिन्दी	अति श	य बल	वीरैमे	रु वर्यौं	शरीरै

चौपाई, सोरठा, दोहा और हरि गीतिका छन्दों का पिंगल विचार अयोध्या काण्ड अथवा आरण्य काण्ड की श्री विनायकी टीका की पुरौनी में मिलेगा ॥

पृ०—६ मैनाक - हिमालय पर्वत को मैना नाम की पत्नी से दो सन्तान उत्पन्न हुए थे. उन में से पुत्र का नाम मैनाक और पुत्री का पार्वती था. कथा प्रसिद्ध है कि पहिले पर्वतों के पंख होते थे, इसहेतु ये कहीं भी उड़ कर जा बैठते थे. इस में असंख्य प्राणियों की हानि देख इन्द्र ने अपने वज्र से सब पर्वतों के पंख काट डाले। मैनाक पहिले ही से दक्षिण समुद्र में जा छिपा था इसहेतु उस के पंख नहीं काटे गये समुद्र ने भी इसे बड़े प्रेम से आश्रय दिया था, कारण पाताल में जाने का दक्षिण समुद्र में से जो एक मार्ग था, वह इस के वहां रहने से बन्द हो गया था। जिस समय हनुमान् जी सीता जी की खोज में आकाश मार्ग से जा रहे थे, उस समय सागर ने विचार किया कि सूर्यवंशी सगर राजा के लड़कों ने पृथ्वी को खोद कर मुझे गंभीरता दी थी और उन्हीं के वंश में रामचन्द्र जी हैं जिन की पत्नी की खोज के लिये हनुमान् जा रहे हैं तो उन को कुछ विश्राम देना चाहिये। इसहेतु मैनाक से कहा कि तुम ऊंचे उठ कर हनुमान् जी को विश्राम दो सुनते ही मैनाक ने ऐसा ही किया, परन्तु पहिले हनुमान् जी ने समझा कि पर्वत मुझे बाधा करने को आया है, इसहेतु उस की एक चोटी को उखाड़ कर फेंक दिया, तब मैनाक ने मनुष्य रूप धारण कर हनुमान् जी से यों कहा कि हे महावीर! आप पहिले कुछ मधुर फल खाकर तथा मीठा पानी पीकर विश्राम करें फिर लंका को पधारें। इन विनय पूर्ण वचनों को सुन हनुमान् जी बोले कि आप के इस सत्कार के लिये मैं धन्यवाद देता हूं परन्तु क्षमा कीजिये मैं अभी न कुछ ग्रहण कर सक्ता हूं और न ठहर ही सक्ता हूं क्योंकि

'राम काज कीन्हें बिना मोहि कहां विश्राम'

क्षेपक

पृ० १४ मन्दिर महँ न दीख वैदेही—के आगे का क्षेपक—

चौ०—सोचै लाग कहां अब जाऊं। कहां दरश सीता कर पाऊं॥
बिन देखे जो सीतहि जाऊं। कैसे वदन प्रभुहि दिखराऊं॥
जामवंत पूछहि कुशलाता। नीकी अहहि जानकी माता॥
कवन उतर दैहौं तिन जाई। पवन तनय मन महँ पछिताई॥
निशिचर घोर भयङ्कर रहहीं। सीता की सुधि कोउ न कहहीं॥
पूछौं काहि कहौं केहि जाई। जनकसुता को देइ बताई॥

सूचना—इन छः लकीरों के बदले किसी किसी रामायण में केवल तीन ही लकीरों का क्षेपक है जिस का आशय कुछ २ ऊपर ही के आशय से मिलता है

पृ० ४८ उंचास पवन—के आगे का क्षेपक—

छन्द—चढ़्यो फलांगि धाम लूम लाम को उठायऊ।
मनो अकाश ते नदी कृशानु की बहायऊ ॥
कि' लंक लील नेक काल जीह सी पसारहू ।
कि धौं अनी महान शूर सैफ सी निकारहू ॥
फिराय लाय लाय ऐन मैन से लगे बरै ।
गयंद छोर वाजि छोर ऊंट छोरिये खरै ॥
अनेक बाल बालकी सु तात मात बोलहीं ।
बचाय लीजिये हमें समय समान डोलहीं ॥२॥
अनेक नारि मारि रिंभ डिंभ काढ़ि लावहीं ।
अनेक डारि डारि वस्तु बारि लेन धावहीं ॥
अनेक कन्त वीर ते पुकार बैन यों कहैं ।
उठाय लेहु लाल माल जाल दे परो तहैं ॥३॥
गिरैं कँगूर दूर ते तबै कहै मँदोदरी ।
विहाय लोक लाज कानि भागती न क्यों अरी ॥
अरे अकंपनाय केकि कंठ की महोदरं ।
लिवाय लेहु अध्वगाति पूतनाति सोदरं ॥४॥
अनेक बार मैं कही बुझाय हू विभीषणं ।
न मानि दाढ़ि जार ने कुठार वंश तीच्णं ॥
निकेत द्वार अर्द्ध उर्द्ध हाट बाट में जहां ।
लुकात जाय नीर कीश तीर देखिये तहां ॥५॥
बधू जो कुम्भकर्ण की पसार हाथ भाखिये ।
दुहाय रामचन्द्र केर मोर कन्त राखिये ॥
अनेक धाय धाय जाय रावणै सुनायहू ।
विचार वीर मेघनाद से बली पठायहू ॥६॥
अनेक अस्त्र शस्त्र लाय आय मारने लगे ।
घुमाय दीन्ह बालधी पुकार क्रूर से भगे ॥
विशाल ज्वाल जानि कोप मेघ बोलि यों कही ।
बुझाय देहु आगि रे बहाय कीश को सही ॥७॥
भले सुनाय मेघ आय पुंज पाथ छांड़ऊ ।
यथा सनेह पाय चौगुनी कृशानु बाढ़ेऊ ॥

लगी जु अङ्ग अङ्ग बान मान ले भगे सबै ।
निहार रीति मालवान स्यान बोलियो तबै ॥
न आहि याहि अग्नि आहि ईश की जु वामता ।
समीर श्वास सीय की जु राम रोष मामता ॥
बुलाय काल ते कह्यो लँगूर लाहु मारि कै ।
बटोर भूत प्रेत यक्ष दण्ड चण्ड धारि कै ॥९॥
विलोक बातजात घात कीन्ह सैन तासु को ।
उठाय गाल में धरो परो खँभार जासु को ॥
समेत शम्भु इन्द्र बातजात पास आयऊ ।
सभीत पंकजासनादि बीनती सुनायऊ॥१०॥

दो०—देहु छांड़ि यमराज कहँ यही विनय इक मोर ।
पर बैश आयो लरन सुनि, दीन्ह गाल ते छोर ॥

पृ० ५१ (पुनि सो कहँ॥सोइ दिन) 'सोइ राती' के आगे का क्षेपक—

दो—जिमि मणि बिन व्याकुल भुजग, जल बिन व्याकुल मीन ।
तिमि देखे रघुनाथ बिन, तलफत हैं मैं दीन ॥
कब धौं विधि पहुँचाइ है, फिर कौशलपुर तात ।
भरत शत्रुहन लोग सब, कब लहि हैं मुद मात ॥२॥
हुइ हैं मङ्गल काज कब, पुजि हैं याचक काम ।
नख सिख कब अवलोकि हौं, रघुपति छबि अभिराम ॥३॥
शीस मुकुट मणि गण जटित, श्रवणन्ह कुंडल लोल ।
जगमगात कब देखिहौं, टोपी दिये अमोल ॥४॥
अलकैं सींचीं अतर से, निकट कपोलन्ह मुक्त ।
भरि लोचन कब देखि हौं, कुसुम कलिन संयुक्त ॥५॥
भाल तिलक भासित सुभग, भृकुटी धनु अनुहारि ।
भूरि भाग्य कब देखिहौं, नयनन्ह पलक बिसारि ॥६॥
चंचल चारु विशाल शुभ, लोचन मोचन मान ।
चितवत दिशि कब देखिहौं, मन को करि कुरबान ॥७॥
कीर तुंड सम नासिका, लटकन की छवि भूरि ।
कब चकोर सम देखिहौं, मुख मयंक तृण तूरि ॥८॥
अरुण अधर दाड़िम दशन, रसन चारु मृदुहास ।
हे हरि कब अवलोकि हौं, शशि कर सरिस प्रकास ॥९॥

दो०—मधुर वचन जन मन हरत, कब सुनि हौं निज कान ।
चिबुक चारु कब देखिहौं, चितवन अमी समान ॥१०॥
कम्बु कण्ठ तुलसी सुभग, मणि मोतिन की माल ।
उर दीरघ अवलोकिहौं, कब त्रिवली सुख जाल ॥११
भुज विशाल करि कर सरिस करतल कमल समान ।
सहित विभूषण देखिहौं, कब लीन्हे धनु बान ॥१२॥
झीन झँगा पहिरे ललित, ता ऊपर पट पीत ।
कब निज नयन सिराइ हौं, देखि उदर उपवीत ॥१३॥

पृ० ५५ चलत मोहि चूड़ामणि दीन्ही—इसके नीचे का क्षेपक यथार्थ में कहहु तात केहि भांति जानकी········के नीचे का है ।

चौ—कौन भांति लंका विस्तारा । सो सब वर्णहु पवन कुमारा ॥
सुनत वचन मारुति कह बानी । सुनिये दीनबन्धु सुखदानी ॥
गिरि त्रिकूट पर लंक सुहाई । वरणि न जाय मनोहर ताई ॥
पांच लक्ष हैं पत्थर के घर । औ नव लाख काठ के सुन्दर ॥

दो०—सात कोटि हैं ताम्र के, चांदी के श्रुति कोटि ।
जातरूप केहू इते, माणिक कोटि सु ओटि ॥

चौ०—तृण निर्मित पट कोटि विशाला । वंश छाल शत कोटि दयाला ॥
नव करोर स्फटिक सुहाये । सहस कोटि मणि नील सुछाये ।

चौ०—शत योजन में पुरी सुहाई । घनी बसत अतिशय रघुराई ॥
राज करत रावण तहँ स्वामी । सो तुम जानत अन्तर्यामी ॥
दश शिर ताके भुज प्रभु बीसा । देव दनुज नावत सब सीसा ॥
ताकी प्रभुताई तहँ भारी । राज करत भय त्यागि खरारी ॥
चलिये प्रभु अब विलंब न कीजै । जनकसुता को धीरज दीजै ॥
तुम बिन सीय महा दुख पावत । तुम बिन तिन्हैं कछू नहिं भावत ॥

पृ० ६७ (ते सब हँसे) 'मष्ट करि रहहू'—के आगे का क्षेपक—

चौ०—सुनि घट श्रुति बोला अहँकारी । को है त्रिभुवन सरिस हमारी ॥
जो सन्मुख सक नयन मिलाई । अस कह चला विवस औंधाई ॥
तब सक्रोध बोला अतिकाया । आयसु मोहि देहु करि दाया ॥
अबहीं क्षिति नर हरि बिन करहूं । और मंत्र का बहु उच्चरहूं ॥

कामरूप बोला घननादा । मम प्रभाव जग जानत जादा ॥
विधि हरि हर वश कियऊँ जुझारू । नर बनरन्ह हित कौन विचारू ॥
कुंभ निकुंभ दंभ छलकारी । बोले विश्रुता विदित हमारी ॥
कृपादृष्टि सब देव निहारैं । देखत उच्चासन बैठारैं ॥
भोजन हित कहियत तिन पाहीं । हम काहू कर छुआ न खाहीं ॥
डाँटत बोलि सकै नहिं एकू । कपि मानुष हम गनै न नेकू ॥
मत्सर रूप अकम्पन कहई । हमैं जियत अस को सिय लहई ॥
कहौ उपाय करौं अब सोई । नर बानर जेहि बचै न कोई ॥
अपर कथा कहिये का छोभी । तब भा भनत महोदर लोभी ॥
जो आवैं अनगिनत करोरी । डारौं खाय भरै मम झोरी ॥
तौ कपि सहस लाख केहि लेखे । जैहैं भूमिनाग हम देखे ॥
बोला तब दुर्मुख पाखण्डी । छल कर हरि आनहु दोउ दण्डी ॥
जो चाहयो सो कीन्हयो पाछे । बद मकराक्ष कपट बपु काछे ॥
विपुल विप्र जा मैं बरि आनी भूसुर बनि कोइ सकै न जानी ॥

दो०--तिन के छल से राम को, प्रभु तहँ लेहिं बुलाय ।
धर बांधैं लावैं यहां, कैसो कहो उपाय ॥

पृष्ठ ७४-अस कहि कीन्हेसि चरण प्रहारा—इस पृष्ठ की टिप्पणी में चरण प्रहार करने का जो कारण लिखा है उसे और भी स्पष्ट तथा पुष्ट करने के हेतु हनुमन्नाटक (महन्त श्री रामाजी चतुरदास रतलाम निवासी कृत) कवितावद्ध भाषा टीका से उद्धृत करके प्रमाण लिखा जाता है, जैसे—
रावण कहता है—

चन्द्रायणा छन्द—कह सकोप जानकी जीय जानन्त हौं ।
मधुसूदन रघुनंद मनसि मानन्त हौं ॥
बध जानत दशवदन तदपि थिर थप्पि हौं ।
हरि हां, मेरे जीवत राम सीय न समप्पि हौं ॥

दो०—रावण ऐसे बचन कहि, कृत वामांघ्रि प्रहार ।
तबै विभीषण गमन किय, लिये सचिव सँग चार ॥

सुन्दर काण्ड के प्रसिद्ध मूलमंत्र फलश्रुति सहित।

स्मरण रहे कि श्रद्धा और विश्वास रखनेवाले सत्पुरुषों को सम्पूर्ण सुन्दर काण्ड का भक्तिपूर्वक पाठ ही इच्छित फल का देने वाला है तौ भी उसमें से कुछ मूलमंत्र इस प्रकार के लिखे जाते हैं कि जिन में से प्रत्येक ही अनोखी रीति से इष्ट सिद्धि का दाता हो जाता है (यदि प्रेमपूर्वक उस का मनन समयानुसार किया जावे). यथा—

१— किसी कार्य के करने की इच्छा होने पर यदि चित्त में प्रसन्नता उठे तो निश्चयपूर्वक कार्य की सफलता निमित्त यह चौपाई पढ़े—

जब लगि आवउँ सीतहि देखी । होइ काज मन हर्ष विसेखी ॥

२—जिस समय अपना प्रियपरिजन किसी शुभ कार्य के लिये जाता हो तो उसे यह कह कर आशीर्वाद देवै—

(अ) राम काज सब करिहहू , तुम बल बुद्धि निधान ।
आशिष दै सुरसा चली , हर्षि चले हनुमान ॥

(ब) आशिष दीन्ह राम प्रिय जाना । होहु तात बल बुद्धि निधाना ॥

३—संकट उपस्थित होने पर इसका जाप करे—

उमा न कछु कपि की अधिकाई । प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ॥

४—जब कोई मनुष्य अपने मन में किसी कार्य के करने को निकले और विश्वास पूर्वक इस चौपाई को मनन करे तो उस का अभीष्ट अवश्य सिद्ध होगा—

प्रविशिः नगर कीजै सब काजा । हृदय राखि कोशलपुर राजा ॥

५—कोई भारी या कठिन कार्य सिद्ध करने के निमित्त नीचे लिखी चौपाइयों का स्मरण सहायक होगा—

गरल सुधा रिपु करै मिताई । गोपद सिंधु अनल सित लाई ॥
गरुअ सुमेरु रेणु सम ताही । राम कृपा करि चितवहिं जाही ॥

६—चित्त के क्षोभ में इस चौपाई का पाठ करे—

इहि विधि कहत रामगुणग्रामा । पावा अनिर्वाच्य विश्रामा ॥

७—आपत्ति में पड़ा हुआ मनुष्य इन दो चौपाइयों में से किसी एक को बार २ रटे तो आपत्ति से छुटकारा पावेगा—

(अ) बूड़त विरह जलधि हनुमाना । भयहु तात मो कहँ जलयाना ॥
(ब) रामवाण रवि उदय जानकी । तम वरूथ कहँ यातुधान की ॥

८—शत्रु के सन्मुख पड़ जाने पर इस के जाप से उबर सकेगा—

कनक भूधराकार शरीरा । समर भयंकर अति बल बीरा ॥

९—प्रबल पराक्रमी शत्रु को वश में करने का यह मूलमंत्र है—

प्रभु प्रताप से गरुड़ ही , खाइ परम लघु व्याल ॥

१०—व्याधि ग्रस्त जीवधारी के बचाव निमित्त इस चौपाई का पाठ बहुत कुछ लाभदायक होगा—

अजर अमर गुणनिधि सुत होहू । करहिं सदा रघुनायक छोहू ॥

११—अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तम और शुभ कार्य करते हुए यदि इस की रटन लगाये रहे तो निर्वाह आनन्दपूर्वक होता रहेगा—

धारि हृदय रघुपति चरण, तात मधुर फल खाहु ॥

१२—धार्मिक और परोपकारी पुरुष के कर्मों का फल अच्छा ही होता है इस अनुसंधान से इस मंत्र का जाप करे—

मुख प्रसन्न तनु तेज विराजा। कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा॥

१३—सन्तजन दूसरों की भलाई तथा कार्य सिद्धि के हेतु इस प्रकार का आशीर्वाद अपने इष्टदेव के भरोसे देते हैं—

(अ) जामवन्त कह सुन रघुराया। जापर नाथ करहु तुम दाया॥
ताहि सदा शुभ कुशल निरंतर। सुरनर मुनि प्रसन्न तेहि ऊपर॥
सो विजयी विनयी गुणसागर। तासु सुयश तिहुँ लोक उजागर॥

(ब) तुम कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न व्याप त्रिविध भव शूला॥

१४—प्राणांतिक कष्ट के समय पुरुष (यदि हो सके तो स्वतः, नहीं तो) दूसरों के द्वारा इस का जाप करावे—

दो०—नाम पाहरू दिवस निशि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निजपद यंत्रिका, प्राण जाहिं केहि बाट॥३०॥

१५—किसी कठिन कार्य के सम्पादन निमित्त चलते समय इस चौपाई को याद करे—

हर्षि राम तब कीन्ह पयाना। शकुन भये सुन्दर शुभ नाना॥

१६—यदि कोई पाप कर्म बन आवे तो उस के क्षमा कराने के निमित्त पश्चाताप करते हुए इन चौपाइयों का स्मरण किया करे—

(क) शरण गये प्रभु ताहु न त्यागा। विश्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
(ख) कोटि विप्र बध लागहि जाही। आये शरण तजउँ नहिं ताही॥
(ग) सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नाशउँ तबहीं॥

१७—किसी से कष्ट पाते हुए मनुष्य को इस दोहे का पाठ परम उपकारी होगा—

रावण क्रोध अनल निज, श्वास समीर प्रचंड।
जरत विभीषण राखेऊ, दीन्हेउ राज अखंड॥

१८—इस दोहे के पाठ करने से मनुष्य का कल्याण होता है और वह श्री रामचन्द्र जी की भक्ति पाकर मुक्ति पा लेता है—

सकल सुमंगल दायक, रघुनायक गुण गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिंधु बिना जलयान॥

सुन्दरकाण्ड की प्रसिद्ध कहावतें।

चौ०-जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। तेही भाँति चला हनुमाना॥
दो०-राम काज कीन्हें बिना, मोहि कहां विश्राम॥१॥
तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अङ्ग।
तुलै न ताही सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग॥४॥

चौ०-लंका निशिचर निकर निवासा । इहां कहां सज्जन कर वासा ॥
राम नाम तेहि सुमिरन कीन्हा । हृदय हर्ष कपि सज्जन चीन्हा ॥
इहि सन हठि करि हौं पहिचानी । साधु ते होइ न कारज हानी ॥
सुनहुँ पवनसुत रहनि हमारी । जिमि दशनन्ह महँ जीभ बिचारी ॥
तामस तनु कछु साधन नाहीं । प्रीति न पद सरोज मन माहीं ॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता । बिन हरि कृपा मिलहिं नहिं संता ॥
सुनहुँ बिभीषण प्रभु कै रीती । करत सदा सेवक पर प्रीती ॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा । ता दिन ताहि न मिलै अहारा ॥
जानत हू अस स्वामि बिसारी । फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी ॥
'तृण धरि ओट कहति वैदेही' । सुमिरि अवधपति परम सनेही ॥
'नर वानरहिं संग कहु कैसे' । कही कथा सङ्गति भइ जैसे ॥
'सहज बानि सेवक सुखदायक' । कबहुँक सुरति करत रघुनायक ॥
कहेउ राम वियोग तव सीता । मोकहँ सकल भयउ विपरीता ॥
कहेहू ते कछु दुख घटि होई । काहि कहउँ यह जान न कोई ॥

चौ०-तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एक मन मोरा ॥
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं । जानु प्रीति रस इतनेहि माहीं ॥
जासु नाम जपि सुनहु भवानी । भव बन्धन काटहिं नर ज्ञानी ॥
तासु दूत बंधन तरु आवा । 'प्रभु कारज लगि आपु बँधावा' ॥
'सब के देह परम प्रिय स्वामी' । मारहिं मोहि कुमारग गामी ॥
'जिन मोहि मारा तिन मैं मारा' । तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारा ॥
मोहि न कछु बाँधे कर लाजा । कीन्ह चहौं निज प्रभु कर काजा ॥
राम नाम बिन गिरा न सोहा । देखु बिचार त्यागि मद मोहा ॥
सब भूषण भूषित बर नारी । बसन हीन नहिं सोह सुरारी ॥
राम बिमुख सम्पति प्रभुताई । जाइ रही पाई बिनु पाई ॥
सजल मूल जिन सरितन्ह नाहीं । बरषि गये पुनि तबहिं सुखाहीं ॥
सुनु दशकंठ कहौं प्रण रोपी । 'राम बिमुख त्राता नहिं कोपी' ॥

दो०—मोह मूल बहु शूल प्रद , त्यागहु तुम अभिमान ।
भजहु राम रघुनायकहिं , कृपासिंधु भगवान ॥२३॥

चौ०-बोला बिहँसि अधम अभिमानी ।'मिला हमहिं कपि गुरु बड़ ज्ञानी'
नाइ शीस कर विनय बहूता । 'नीति विरोध न मारिय दूता' ॥
बचन सुनत कपि मन मुसुकाना । भइ सहाय शारद मैं जाना ॥
साधु अवज्ञा कर फल ऐसा । जरइ नगर अनाथ कर जैसा ॥
ताकर दूत अनल जेइ सिरजा । जरा न सो तेहि कारण गिरिजा ॥
मिले सकल अति भये सुखारी । तलफत मीन पाव जनु वारी ॥
पूछा कुशल कुशल पद देखी । राम कृपा भा काज बिशेखी ॥
प्रभु की कृपा भयउ सब काजू । जन्म हमार सफल भा आजू ॥
बचन काय मन मम गति जाही । सपनेहु बिपति कि चाहिय ताही ॥
कह हनुमान बिपति प्रभु सोई । जब तव सुमिरन भजन न होई ॥

चौ०-सुनु कपि तोहि उऋण मैं नाहीं । देखेउँ करि विचार मन माहीं ॥
शाखा मृग की बड़ि मनुसाई । शाखा तें शाखा पर जाई ॥

दो०-ता कहँ प्रभु कछु अगम नहिं, जा पर तुम अनुकूल ।
तव प्रताप बड़वानलहि, जारि सकइ खलु तूल ॥ ३३ ॥

चौ०-उमा राम सुभाव जिन जाना । ताहि भजन तजि भाव न आना ।
अब विलम्ब केहि कारण कीजै । तुरत कपिन्ह कहँ आयसु दीजै ॥
जासु दूत बल बरणि न जाई । तेहि आये पुर कवनि भलाई ॥
सुनहुँ नाथ सीता बिन दीन्हें । हित न तुम्हार शम्भु अज कीन्हें ॥

दो०-रामबाण अहिगण सरिस, निकर निशाचर भेक ।
जब लगि ग्रसत न तबहि लगि, यतन करहु तजि टेक ॥३६॥

चौ०-सभय सुभाव नारि कर साँचा । मंगल महँ भय मन अति काँचा ॥
जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं । 'नर वानर केहि लेखे माहीं' ॥

दो०-सचिव वैद्य गुरु तीन जो, बोलहिं प्रिय भय आश ।
राज धर्म तन तीन कर, होइ बेग ही नाश ॥३७॥

चौ०-जो आपन चाहउ कल्याना । सुयश सुमति शुभगति सुख नाना ॥
तौ परनारि लिलार गोसाईं । तजउ चौथि चंदा की नाईं ॥
चौदह भुवन एक पति होई । भूत द्रोह तिष्ठै नहिं सोई ॥
गुण सागर नागर नर जाऊ । अल्प लोभ भल कहै न कोऊ ॥

दो०-काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक कर पंथ ॥
सब परिहरि रघुबीर पद, भजहु कहहिं सद्ग्रंथ ॥३८॥

चौ०-देहु नाथ प्रभु कहँ वैदेही । 'भजहु राम बिन काम सनेही' ॥
रिपु उत्कर्ष कहत शठ दोऊ । दूरि न करहु इहां है कोऊ ॥
'सुमति कुमति सब के उर रहहीं' । नाथ पुराण निगम अस कहहीं ॥
जहां सुमति तहँ सम्पति नाना । जहां कुमति तहँ विपात निदाना ॥
तव उर कुमति बसी विपरीती । हित अनहित मानहु रिपु प्रीती ॥
उमा संत की यहै बड़ाई । मंद करत जो करै भलाई ॥
तुम पितु सरिस भलेहि मोहि मारा । 'राम भजे हित होय तुम्हारा ॥
साधु अवज्ञा तुरत भवानी । कर कल्याण अखिल कै हानी ॥
जे पद परसि तरी ऋषिनारी । दंडक कानन पावन कारी ॥
जे पद जनकसुता उर लाये । कपट कुरंग संग धर धाये ॥

हर उर सर सरोज पद जेई । अहो भाग्य मैं देखब तेई ॥

दो०-जिन पाइन्ह कर, पादुका, भरत रहे मन लाइ ।
ते पद आज विलोकिहउँ, इन नयनन्हि अब जाइ ॥४२॥

चौ० – 'जानि न जाय निशाचर माया' । कामरूप केहि कारण आया ॥

दो० – शरणागत कहँ जे तजहिं , निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पामर पापमय , तिनहिं विलोकत हानि ॥४३॥

चौ० – पापवंत कर सहज सुभाऊ । भजन मोर तेहि भाव न काऊ ॥
जो पै दुष्ट हृदय सो होई । मोरे सन्मुख आव कि सोई ॥
निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥
सहज पापप्रिय तामस देहा । 'यथा उलूकहि तम पर नेहा' ॥
कहु लंकेश सहित परिवारा । 'कुशल कुठाहर वास तुम्हारा' ॥
खल मंडली बसहु दिन राती । सखा धर्म निबहै केहि भाँती ॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती । अति नय निपुण न भाव अनीती ॥
बरु भल बास नरक कर ताता । दुष्ट संग जनि देइ विधाता ॥

दो० – तब लगि कुशल न जीव कहँ , सपनेहुँ मन विश्राम ।
जब लगि भजत न राम कहँ , शोक धाम तजि काम ॥४६॥

चौ० – तब लगि हृदय बसत खल नाना । लोभ मोह मत्सर मद माना ॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा । धरे चाप सायक कटि भाथा ॥
ममता तिमिर तरुण अँधियारी । राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥
तब लगि बसत जीव मन माहीं । जब लगि प्रभु प्रताप रवि नाहीं ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा । सो प्रभु हरषि हृदय मोहि लावा ॥

दो० – अहो भाग्य मम अमित अति , रामकृपा सुखपुंज ।
देखेउँ नयन विरंचि शिव , सेव्य युगल पदकंज ॥४७॥

चौ०–जो नर होइ चराचर द्रोही । आवइ सभय शरण तकि मोही ॥
तजि मद मोह कपट छल नाना । करउँ सद्य तेहि साधु समाना ॥
जननी जनक बन्धु सुत दारा । तन धन भवन सुखद परिवारा ॥
सब की ममता ताग बटोरी । मम पद मनहिं बाँधि बट डोरी ॥
समदर्शी कछु इच्छा नाहीं । हर्ष शोक भय नहिं मन माहीं ॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे । लोभी हृदय बसत धन जैसे ॥
तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे । धरउँ देह नहि आन निहोरे ॥

दो०–सगुण उपासक परम हित , निरत नीति दृढ़ नेम ।
ते नर प्राण समान मम , जिन के द्विज पद प्रेम ॥४८॥

दो०–जो संपति शिव रावणहि , दीन्हि दिये दश माथ ।
सो संपदा विभीषणहि , सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥४६॥

चौ०–अस प्रभु छाँड़ि भजहिं जे आना । ते नर पशु बिन पूँछ विषाना ॥
सखा कहो तुम नीक उपाई । करिय दैव जो होइ सहाई ॥
कायर मन कर एक अधारा । दैव दैव आलसी पुकारा ॥
करत राज लंका शठ त्यागा । 'होइहि यव कर कीट अभागा' ॥

चौ०-नाथ कृपा करि पूछेहु जैसे। मानहु कहा क्रोध तजि तैसे॥
सुनत वचनबिहँसा दशशीशा। जो अस रुति सहाय कृतकीशा॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। 'रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई'॥
सचिव सभीत विभीषण जाके। विजय विभूति कहां लगि ताके॥
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा॥

दो०-बोले राम सकोप तब, 'भय बिन होइ न प्रीति' ॥५७॥

चौ०-शठ सन विनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपण सन सुन्दर नीती॥
ममतारत सन ज्ञान कहानी। अति लोभी सन विरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बये फल यथा॥

दो०-काटेहि पै कदली फरै, कोटि यतन कोउ सींच।
विनय न मान खगेश सुनु, डाँटेहि पै नम नीच॥५८॥

चौ०--प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई॥
ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥

सुन्दर काण्ड सार।

हनुमान् जी समुद्र लांघ कर लंका में जाने को उद्यत हुए. वे एक पर्वत की चोटी पर जा खड़े हुए और अपने शरीर को तौल कर ज्यों हीं इन्हों ने उड़ान भरी, त्यों हीं वह पर्वत पृथ्वी में धस गया. आकाश मार्ग में जाते समय समुद्र के कहने से मैनाक पर्वत ने उन से विश्राम लेने को कहा, परन्तु हनुमान् जी यह कह कर चले गये कि 'राम काज कीन्हें बिना, मोहि कहां विश्राम'

देवताओं की भेजी हुई सुरसा ने भी इन्हें छेड़ा, परन्तु जब जान लिया कि ये बल बुद्धि से परिपूर्ण हैं तब यह आशीर्वाद देकर चली गई कि 'राम काज सब करिहहु, तुम बल बुद्धि निधान'

समुद्र में बसने वाली सिंहिका नाम की राक्षसी का प्राण हरण करके ये लंका के समीप जा पहुँचे. वहाँ पर सोने की लंका को दृढ़ पुरकोटे तथा बड़ी २ खाइयों से घिरी हुई कट्टर राक्षसों से रक्षित देख कर ये रात्रि के समय छोटा रूप धारण कर उस में पैठने लगे. इतनेमें लंकिनी नाम की राक्षसी से छेड़ छाड़ किये जाने पर इन्होंने उसे घूंसा जमा कर ठीक कर दिया. ये सीता जी की खोज में रावण के महलों में भी जा पहुँचे परन्तु वहां भी सीता जी का पता न पाया. समीप ही राम नाम अंकित महलों में से राम नाम की ध्वनि सुनते ही ये बटुरूप धारण कर विभीषण से जाकर मिले. विभीषण के बतलाये हुए पते से ये अशोक वाटिका में उसी वृक्ष पर छोटे रूप से जा छिपे, जिस के नीचे सीता जी बैठी थीं. उसी समय रावण अपनी अनेक स्त्रियों समेत वहां आकर साम दान दंड आदि के प्रयोग से सीता जी को अपने वश करना चाहता था परन्तु सती सीता जी ने इस प्रकार उसे झिड़क कर लज्जित किया कि वह उन्हें सोचने के लिये एक मास की अवधि देकर चला गया.

हनुमान जी ने वृक्ष पर से मुद्रिका डालदी, सीता जी ने उसे देखते ही बहुत कुछ विलाप किया निदान हनुमान् जी प्रकट हुए और उन्हों ने अपना विश्वास जमा कर उन्हें रामचन्द्र जी का संदेशा कह सुनाया, फिर वे उन्हें ढाढ़स बंधाय उन की आज्ञा पाय फल खाय वृक्षों को तोड़ने लगे।

रखवालों ने रोका तो उन्हें मार खाकर भागते ही बना, भाग कर उन्हों ने रावण को ख़बर जनाई, उस ने अनेक योधाओं को अपने पुत्र अक्षय कुमार के साथ भेजा, हनुमान् जी ने सब को मार डाला, निदान मेघनाद आया जो हनुमान् को नाग फांस में फँसा ले गया।

राज सभा में जाकर हनुमान् जी ने दशमाथ को रघुनाथ जी का प्रताप कह सुनाया और उन से मेल करने को कहा, परन्तु रावण अभिमानी ने उन की एक न मानी।

दूत को दंड देने के विचार से हनुमान् की पूँछ में कपड़े लपेट उन्हें घी और तेल में भिगोकर आग लगादी गई, बुद्धिमान् हनुमान् जी को यह अच्छा अवसर मिला, उन्हों ने कूदते फांदते सब लंका जलादी, फिर वे पूँछ बुझाय, सीता जी से चूड़ामणि ले, उन्हें धीरज दे, समुद्र के इस पार आगये, वे सुग्रीव के साथ श्री रामचन्द्र जी के पास गये, वहाँ पहुँच कर उन्हों ने सीता जी का सतीत्व के साथ सुरक्षित रहने का समाचार कह सुनाया।

श्री रामचन्द्र जी ने प्रसन्नता पूर्वक उन्हें हृदय से लगा लिया। फिर सुग्रीव के बुलाये हुए सम्पूर्ण वानरों और राक्षसों को साथ लेकर सब के सब लंका की ओर चले। उन्हों ने समुद्र के किनारे डेरा डाल दिया॥

लंका दाह होते ही रावण के राज्य में खलबली पड़ गई। मन्दोदरी और विभीषण ने रावण को बहुत समझाया पर उस के जी में एक न भाया। जब विभीषण ने सीता फेर देने को कहा तब तो दुष्ट रावण ने उसे लात मारी। विभीषण रामचन्द्र जी से जा मिला। श्री रामचन्द्र जी ने उसे अपनी शरण में ले लिया और उस की भक्ति तथा नम्रता से प्रसन्न हो उसे रावण के जीते जी ही लंका के राज्य का अधिकारी नियत कर दिया॥

अपने दूत शुक के द्वारा विभीषण का तिलक तथा राम दल की प्रबलता सुन, रावण पहिले तो सकाना परन्तु फिर लड़ने को तैयार हो गया। यहाँ श्री रामचन्द्र जी भी समुद्र के पुल बाँधने की तैयारी करने लगे॥

सुन्दरी सीता सती।

श्री वाल्मीकि जी ने लिखा है कि 'सुन्दरे सुन्दरी सीता' अर्थात् सुन्दर काण्ड में सुन्दरी सीता जी का वर्णन है। सौंदर्य की सराहना केवल रूप लावण्यता ही के कारण नहीं होती है, वरन स्त्री के सराहनीय सुलक्षणों पर विशेष निर्भर रहती है। सीता जी में ये दोनों प्रकार की सुन्दरता उदाहरणीय थीं (अर्थात्

वे जैसी रूपवती थीं वैसी ही गुणवती भी थीं) । इन्हों ने कवि की इस कहावत को सत्य कर दिखाया कि 'यत्रा कृतिस्तत्र गुणा वसंति' अर्थात् सुन्दरता में सद्गुण रहते हैं । उत्तमा स्वकीया नायिका के लक्षण पद्माकर कवि जी ने यों लखाये हैं :-

क०-शोभित स्वकीया गन गुन गिनती में तहां तेरे नाम ही की एक रेखा रेखियतु है ।
कहैं 'पद्माकर' पगी यों पति प्रेम ही में पदमिन तो सी तिया तू ही पेखियतु है ॥
सुबरन रूप जैसो तैसो शील सौरभ है याही ते तिहारो तन धन्य लेखियतु है ।
सोने में सुगध ना सुगंध में सुन्या ही सोनो सोनो औ सुगंध तो में दोनों देखियतु है ॥

बहुत ही सुकुमारी जनकदुलारी पतिव्रता सीता जी विवाह के पश्चात् श्री अवधविहारी की प्राण प्यारी बन कर कई वर्ष तक उन के साथ अवध में सुख चैन से रहती रहीं, परन्तु कैकयी के वरदानों के अनुसार जब श्री रामचंद्र जी को १४ वर्ष के लिये बन में जाने की आज्ञा हुई तब वे श्री रामचन्द्र जी के साथ जाने को तयार हुईं और पति से विनय करने लगीं कि मायके तथा सासरे के सकल सुखों पर विचार किया तौ भी मेरा तो यही दृढ़ निश्चय है कि मैं आप के चरणों का दर्शन करती रहूं, क्योंकि—

चौ०--तन धन धाम धरनि पुर राजू । पति विहीन सब शोक समाजू ॥
जिय बिन देह नदी बिन वारी । तैसेहि नाथ पुरुष बिन नारी ॥

ऐसा कह वे अपने पति की आज्ञा ले उन के साथ ही साथ बन को सिधारीं । वहाँ पर यद्यपि उन्हें पाँय प्यादे चलना, बन के कंद मूल फल खाकर निर्वाह करना, तथा बन में अधिक धूप और वर्षा के दुःखों को सहना पड़ता था, तौ भी उन्हों ने इन सब क्लेशों का लेशमात्र भी विचार न किया और आनन्दपूर्वक अपने पति की सेवा में तत्पर बनी रहीं ॥

इसी को पतिव्रताओं के हितकारी कवि मुरारी जी यों स्पष्ट कर समझाते हैं—

भजन—सीता की ओर निहारलो , जो थी सतवन्ती नारी॥
गई साथ पति के वह बन को,त्यागि सभी सुख संपति धन को।
कष्ट दिया अति अपने तन को , नहिं मन में घबराई ॥
सब छोड़े महल अटारी , जो थी सतवन्ती नारी ॥१॥
रहती थी जो रंग महल में , रहें टहलनी जिसकी टहल में ।
नंगे पैर गई पति की गैल में , ऐसा व्रत तुम धार लो ॥
जो धारा जनक दुलारी , जो थी सतवन्ती नारी ॥२॥
हुई कांति दुगुनी सुख की , नहिं पर वाह करी कछु दुख की ।
सभी लालसा अपने सुख की , पति के ऊपर वार दी ॥
रही सदा वह आज्ञाकारी, जो थी सतवंती नारी ॥ ३ ॥

पति सेवा में हित चित दीजो, आज्ञा भङ्ग कभी नहिं कीजो ।
मेरा कहा मान अब लीजो' यहि जीवन का सार लो ॥
कहे बहिनो खड़ा मुरारी, जो थी सतवंती नारी ॥ ४ ॥

एक बार बिधवा शूर्पनखा अति रूपवती स्त्री का रूप धारण कर पंचवटी में आई, उस ने अपने ही मुँह से अपने बनावटी रूप का प्रशंसा कर श्री रामचन्द्र जी से झूठ ही कह दिया कि मैं कुँआरी हूं मेरे साथ आप विवाह कर लेवें श्री रामचन्द्र जी तो मर्यादा पुरुषोत्तम थे। उन्हों ने अपनी स्त्री के रहते इस कुलटा की बात चीत को अनुचित समझ उसे जवाब दे दिया। तब वह लक्ष्मण जी से व्याह करने को तैयार हो गई, परन्तु उन्हों ने भी इसे स्वीकार न किया। निदान वह भयंकर रूप धर सीता को डरवाने लगी॥

कुमार्गी स्त्रियों के दुर्लक्षण इस में देख, लक्ष्मण जी ने इस के नाक व कान काटकर इसे योग्य दण्ड दिया. इस नकटी बूची ने पहिले तो अपने भाई खर दूषण आदि को उकसा कर १४००० राक्षसों समेत उन का नाश करवाया; फिर अपने भाई रावण के पास जाकर उसे भी सीता जी की सुन्दरता सुनाकर उभाड़ा। सुनते ही रावण यती का भेष धर सीता जी का हरण कर ले गया और उन्हें अपने महलों में रखना चाहता था परन्तु ऐसे घोर संकट के समय भी सती सीता जी ने अपने सच्चे पातिव्रत्य के लक्षण प्रकट किये सो यों कि—

(१) उन्हों ने उस के अति सुन्दर कमनीय और रमणीय भवन में रहना स्वीकार न करके अशोक वृक्ष के नीचे रहना पसन्द किया॥

(२) वहीं पर जब कई बार रावण ने आकर उन्हें 'साम दान भय भेद दिखाया' तौ भी उन्हों ने किसी का परवाह न को और जब रावण कहने लगा कि मेरी बहुतेरी रूपवती रानियाँ हैं उन सब को मैं तुम्हारी दासी बना कर रक्खूंगा, भला तुम मेरी ओर एक बार देखो तो सही, तब परवश होने पर भी सीता जी ने पातिव्रत्य धर्म को यहाँ तक निबाहा कि जब वे उस से बातचीत करने लगीं तब उन्हों ने अपने और उस के बीच में तिनका की आड़ करली क्योंकि पतिव्रता स्त्रियों का यह धर्म कहा गया है कि वे दूसरे पुरुष से बातचीत भी न करें और यदि ऐसा अवसर आही जावे तो मर्यादा के साथ (जैसे कि किवाड़ या दीवाल की ओट ले अथवा चिक के भीतर से या मुँह फेर कर किंवा आज कल की प्रचलित रीति के अनुसार घूंघट घाल कर केवल आवश्यक बातों का उत्तर देवें)। उन्हों ने रावण से यही कहा कि रे दुष्ट ! तू मुझे अकेली पा कर चुरा लाया है इस नीच कर्म की तुझे लाज नहीं आती ? तू अपना राज्य वैभव और पराक्रम मुझ को दिखला रहा है परन्तु ये सब अवधपति के सूर्य के समान प्रताप के साम्हने जुगनू की नाईं हैं। क्या तुझे रघुवीर के तीर की सुध नहीं ? कि जिनने ताड़का सुबाहु का बध कर तेरे चौदह हज़ार राक्षसों का क्षण भर में नाश कर दिया था.

इस की छटा सांगीत रत्नपुष्पावली में यों दरशाई है—

ग़ज़ल—अरे मति मन्द अज्ञानी मुझे तुम क्या सताओगे।
सताये जावगे तुम भी जो मेरा दिल दुखाओगे॥
तु सूने धाम से मुझ को कपट छल करके लाया है।
तो सह परिवार भाई बन्धु लंका को नसाओगे॥
चमक पटबीजने की से कमल खिलता नहीं हरगिज़।
कमल मेरा खिलेगा जब दरश रघुवर दिखावैंगे॥
तु है खद्योत रे रावण वे रघुवर भानुकुल भानू।
जो होवे सिंह की पत्नी कभी नहिं स्यार पावैंगे॥
जब आवें राम लंका में तो लछिमन सङ्ग आवैंगे।
तेरे भुज बीस दश शीसों को मिट्टी में मिलावैंगे॥

ऐसे कठोर वचन सुन कर रावण तलवार लेकर मारने को तैयार हुआ और कहनेलगा कि अरी ! सीता देख, जो अब भी तू मेरा कहना न मानेगी तो इसी तलवार से तेरा सिर उड़ा दूंगा. सीता जी कहने लगीं कि रे रावण ? तू मुझे क्या धमकी दिखा रहा है. मैं धर्म के आगे मृत्यु को कुछ भी नहीं समझती हूं रे पापी ! मेरे गले में तेरे हाथ नहीं पड़ने पावैंगे, इस में तो प्राणपति ही के हाथ पड़ेंगे अथवा तेरी तलवार पड़े तो बहुत ही अच्छा है क्योंकि अब तो मैं ने मरने ही को उत्तम समझा है ऐसे तेरे दुष्ट वचन कौन सहै ? इस धैर्यता को देख रावण भी चकित हो कर कुछ ठिठुका कि इतने में मन्दोदरी ने रावण को समझाया कि स्त्री बध का महापातक अपने शिर पर क्यों वृथा चढ़ाये लेते हो. इन वचनों को सुनकर रावण ने कहा, कि अच्छा, मैं सीता को सोचने के लिये एक महीने की अवधि और देता हूं इतने में यदि यह न समझेगी तो अवश्य मारी जावेगी इतना कह वह अपने महलों की ओर चला, परन्तु चलते समय उस ने रखवाली करने वाली राक्षसियों को यह संकेत किया कि तुम सब मिल कर नाना प्रकार से सीता को त्रास दिखलाती रहना उस समय पर सीता जी की जो दशा थी उसे कवि लछिराम जी यों लखाते हैं—

क०—जा पद पराग त्रिभुवन में कलपतरुबास ता ससंक लंक छलनि छरी रहैं।
'लछिराम' जापर चमर छत्र पखा पौन तापर अशोक वन गरद झरी रहैं॥
वजर कराल दशकन्धर बचन घोर राकसिन बीच क्रोधानल में बरी रहैं।
मैथिली महीप रामचन्द्र के विरह झार मुरछित मालती की माला सी परी रहैं॥

(४) विरह से व्याकुल और शोक से आतुर सीता जी के चित्त में ऐसे विचार उठने लगे कि राक्षसियों के त्रास और रावण के अनुचित तथा

धमकी से भरे हुए कठोर वचनों को सहने की अपेक्षा मरना ही भला है ऐसे अनेक विचारों को बाँधते २ उन के चित्त में ऐसा विक्षेप सा हो गया कि वे कभी २ अनाप शनाप बक उठतीं थीं कभी कहतीं थीं रे चन्द्र ! तुझ में अग्नि तौ भरी है परन्तु तू मुझे अभागिनी जान कर जलाता नहीं ? तारागण भी तो अग्नि की ज्वालायें हैं, हे ज्वालाओ ! मुझे जला जाओ, आगा पीछा मत करो। इतने में त्रिजटा आगई, उसे देख ये बोल उठीं, बस ठीक है हे त्रिजटे ! तुम तौ मेरी विपत्ति का संगिनी हौ चिता बना कर मुझे भस्म कर दो. त्रिजटा जान गई कि इस समय इन्हें भारी सोच है, इसहेतु यदि ये अकेली रह कर सो जावेंगी तौ नींद से इन की विह्वलता कुछ तो अवश्य घटेगी यह विचार कर वह यों कह कर वहां से टल गई कि हे राजकुमारी ! रात्रि के समय अग्नि का मिलना कठिन है, सुबह देखा जावेगा. त्रिजटा के जाने पर हनुमान् जी ने अशोक वृक्ष पर से श्री रामचन्द्र जी की मुद्रिका सीता के साम्हने डाल दी उसे देख कर उन की विरह व्याकुलता ऐसी बढ़ी कि—

क०--बूझत है ताही सो सँदेश सीय बार बार मेरे प्रभु प्राणनाथ सुख सों रहत हैं ।
लछिमन नीके कहां छाँड़े कहा कह्यो तो सों मेरी सुधि लैबे को कबहुँ उमहत हैं ॥
किधौं मेरे औगुन विचार के बिसार दीन्हीं किधौं मेरो नाम लै उसासन भरत हैं ।
बोले हनुमान याहि मुँदरी न कहै मात तेरे पाछे या को राम कंकन कहत हैं ॥

हनुमान् जी से भेंट होते ही जानकी जी ने विरह की दीन दशा दरशाते हुए पूछा कि हे कपि ! मैं इन नयनों से फिर कभी प्रभु के चरणारविंदों को देख सकूँगी । उन्हों ने किस हेतु मेरी सुध बिसराई है इत्यादि. इन वचनों को सुन कर हनुमान् जी ने कहा कि हे माता ! तुम चिंता मत करो, श्री रामचंद्र जी भी तौ तुम्हारे वियोग दुःख से दुःखी हैं यदि उन्हों ने तुम्हारे यहाँ रहने का पता पाया होता तौ वे तुम्हें यहाँ से कभी के लिवा ले गये होते, उन की व्याकुलता कही नहीं जाती। वे जिस किसी से तुम्हारी ही चर्चा कर बैठते हैं और लक्ष्मण जी से तो तुम्हारे रूप गुण आदि का वर्णन करते ही रहते हैं । दिन रात खाते पीते सोते जागते बैठते उठते हर किसी से तुम्हारे ही बारे में बातचीत करते रहते हैं—

जब हनुमान् जी ने सीता जी को श्री रामचन्द्र जी का हृदय विदारक संदेशा कह सुनाया. तब तो वे प्रेम में ऐसो मग्न हो उठीं कि क्षण भर के लिये यथार्थ वैदेही ही हो गईं. समाधान होने पर उन्हों ने हनुमान जी को फल खाने की आज्ञा तो दे दी परन्तु जब सुना कि राक्षसों ने उन को पकड़ कर उन की पूँछ में कपड़े लपेट कर आग लगा दी है तब उन्हों ने शीघ्र ही यह उपाय कर अपने पातिव्रत्य का पूर्ण परिचय दिया सो यों कि— [राम रसायन रामायण से]

चौ—सो सुनि सीता भई दुखारी । अति उताल उठि लै कर वारी ॥
अनल दिपाय प्रदक्षिण दीन्हा । कहि वर बैन सत्य प्रण कीन्हा ॥

दो०—मेरो मन वच कर्म ते , सत्य पतिव्रत जोय ।
तौ हनुमन्तहि बेग ही , अनल तोय सम होय ॥
यों कहि मुख कपि ओर करि, सींचो अनल सुवारि ।
शीश पुच्छ तच्छन लगो , बीर सु लयो विचारि ॥

इस के प्रभाव से हनुमान् जी के शरीर में अग्नि चन्दन की नाईं शीतल समझ पड़ी तब तो उन्हों ने निधड़क कूद फाँद कर लंका दाह कर दिया—

जब हनुमान् जी चूड़ामाणि ले चलने लगे तब सीता जी ने यह संदेशा भिजवाया था—

चौ—दीन दयाल विरद संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ॥
अनुज समेत गहेहु प्रभु चरणा । दीन बन्धु प्रणतारति हरणा ॥
मन क्रम वचन चरण अनुरागी । केहिअपराधनाथमोहित्यागी
अवगुण एक मोर मैं जाना । बिछुरत प्राण न कीन्ह पयाना ।

हनुमान् जी ने लौट कर श्री रामचन्द्र जी से सीता जी की दशा तथा उन का संदेशा कहा था कि--(राम रसायन रामायण से)

दोहा--सत्य पतिव्रत धर्म युत , प्रभुपद सुमिरहिं सीय ।
दरश आश करि छणहिं छण, बरबस राखहिं जीय ॥
मोहि रावरो दास दृढ़ , जानि महासुख पाय ।
मम स्वामिनि प्रभु हेत यह, विनय करी शिर नाय ॥
हौं दासी प्रभु चरण की, दीन आपनी जानि ।
मोहि दरश दीजै सपदि, हौ सुभक्त सुख दानि ॥
मेरे मन वच कर्म नित, प्रभु बिन और न कोय ।
पराधीन अबला दुखी, देखि कृपा द्रुत होय ॥

संदेशा पाते ही श्री रामचन्द्र जी रीछ और वानरों की सेना ले लंका में आ, रावण को मार, सीता जी के साथ अवध में आन कर सुख से राज्य करने लगे ॥

यह सीता जी का पूर्ण जीवन चरित्र नहीं हैं इस में तो उन के नाना प्रकार के असह्य संकटों को सह कर अपने सत्य पातिव्रत्य धर्म के निबाहने का वर्णन है ॥

स्त्रियों को चाहिये कि वे सीता सती के आचरणों को उदाहरणीय मान अपने पातिव्रत्य धर्म का पालन करने में तत्पर रहें, क्योंकि सीता जी ने सत्य पातिव्रत्य धर्म को केवल कह कर ही नहीं सुनाया है बरन करके दिखाया है तभी तो रसिक विहारी जी ने उन के बारे में यों कहा है कि 'सीता सी सुतीय कहूं पति अनुरागता ना' अर्थात् सीता की नाईं सुलक्षणा पतिव्रता स्त्री कहीं देखने में नहीं आई। धन्य है सीता सती को ॥

दोहा ।

सुन्दर सुन्दरि जानकी, सुन्दर कथा विचार ।
सुन्दर श्री रघुनाथ हैं, 'नायक' मति अनुसार ॥



पण्डित विनायकराव ।

(पूर्व) असिस्टेंट सुपरिंटेण्डेण्ट ट्रेनिङ्ग इंस्टिट्यूशन (साम्प्रत) पेंशनर जबलपुर की
बनाई हुई पुस्तकें और उन के प्रशंसापत्र आदि ।

(१) तुलसीकृत रामायण आरण्य काण्ड श्री विनायकी टीका सहित
मूल्य ।।), कपड़े की जिल्द वाली ।।=) ।

इस में कठिन पद्यों का अन्वय शब्दार्थ, पदच्छेद, अनेक प्रकार के अर्थ, अनेकानेक टिप्पणियां, उल्लेख, जीवनचरित्र, शंकाएं (समाधान सहित) विविध कथाएं, संस्कृत एवं हिन्दी भाषा कवियों की कविता, पिङ्गल विचार इत्यादि, यथोचित स्थानों में दिये गये हैं ॥

दूसी बार इस की २००० प्रतियां मोटे चिकने कागज पर, बड़े अक्षरों में, बड़े आकार में छापी गई हैं ॥

(२) श्री तुलसीकृत रामायण अयोध्या कांड श्री विनायकी टीका सहित न्यौछावर १।)
कपड़े की जिल्द वाली १।≡).

समालोचना-हितकारिणी (पत्रिका) जबलपुर ।

वास्तव में इस रीति पर हिन्दी के किसी काव्य ग्रन्थ की टीका आज तक नहीं छपी। इस टीका में शब्दार्थ, गूढ़ार्थ, भावार्थ सभी कुछ भरा है । संस्कृत के कठिन २ शब्दों की व्युत्पत्ति भी उचित स्थानों पर दी है और अन्वय करते हुए शब्दार्थ देकर भावार्थ दिया है शंका समाधान भी खूब किया है और भिन्न २ शास्त्रों व इतिहासों का जहाँ संकेत है उस का स्पष्टीकरण भी कर दिखाया है । इस के सिवाय हिन्दी व संस्कृत के मुख्य२ कवियों के काव्यसौंदर्य का भी रसास्वादन अनायास ही मिल जाता है । रामायण के दोहा, चौपाई आदि भिन्न २ छन्दों का निरूपण भी इस टीका में पिंगलशास्त्र की अनोखी रीति से किया है और प्रधान २ अलंकारों का भी रूप दर्शाया है । मेट्रीक्यूलेशन परीक्षा के लिये जो विद्यार्थी अयोध्या कांड पढ़ते हैं उन की तो यह बड़े ही काम की वस्तु है ॥

समालोचना—गृहलक्ष्मी, सम्पादक पं० सुदर्शनाचार्य्य बी. ए. -प्रयाग

अब तक जितनी टीकाएं गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस पर छपी हैं उन में निस्सन्देह यह सब से उत्तम है। जिन विद्यार्थियों के कोर्स में अयोध्या कांड भी है उन के लिये तो कल्पवृक्ष ही समझना चाहिये टीका की उत्तमता का निचोड़ उस की पुरौनी में है । इस में जहां तक अयोध्या कांड का सम्बन्ध है वहां तक पिंगल, अलंकार व्याकरण, कथाओं का सार आदि बड़ी योग्यता से वर्णन किया है ॥

अङ्गरेज़ी पत्र का अनुवाद, नागपुर,

प्रिय पण्डित जी,

तुलसीदास कृत अयोध्या काण्ड की श्री विनायकी टीका मैं ने बड़ी प्रसन्नता से पढ़ी, रचना बहुत ही उत्तम है क्योंकि वह साधारण पढ़ने वालों तथा मेट्रीक्यूलेशन की तैयारी करने वाले विद्यार्थियों के लिये उपयोगी है । टिप्पणियों पर तो मेरा विशेष ध्यान झुका उन से मूल का स्पष्टीकरण भलीभांति हो जाता है ।

(सही) रायबहादुर हीरालाल, बी. ए. एफ़. आर. ए. एस.

अङ्गरेज़ी पत्र का अनुवाद-बिलासपुर

मेरे प्रिय पण्डित जी कवि 'नायक'

रामायण पर आप की टीका तो अद्वितीय ही है इस का प्रभाव साहित्य प्रेमियों पर बहुत पड़ रहा है वह इतनी स्पष्ट और ऐसी संगतियुक्त है कि जितने गहरे उस

में पैठते जाओ उतना ही गम्भीर आनन्द उस से प्राप्त होता जाता है । टिप्पणियां और ऐतिहासिक उल्लेख सम्पूर्ण आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं मनुष्य को उसके पत्रा पलटते २ विशेष आनन्द होता है । बहुत विस्तृत न होकर वह तो सार गर्भित है और इतने पर भी यथायोग्य है । परमेश्वर आप की आयु को बढ़ावे जिससे आप इस कार्य को जो उपयोगी है पूरा कर सकें ॥

(सही) बी. जगन्नाथप्रसाद 'भानु कवि' सेटिलमेण्ट आफ़ीसर

(३) 'अयोध्या रत्नभण्डार' नाम की हिन्दी शालाओं में लाइब्रेरी (पुस्तकालय) और इनाम के लिये मंज़ूर की गई है (मूल्य ढाई आना) ॥

(सही) ए. जी. राइट डायरेक्टर शिक्षा खाता, मध्यप्रदेश ।

समालोचना-- इस में श्री तुलसीदास जी के कथनानुसार संसार के व्यवहारों पर तथा परमेश्वर की भक्ति, राजभक्ति, गुरुजनों पर प्रेम, सम्बन्धियों का स्नेहादि अनेक उपयोगी नैतिक विषयों पर उपदेश हैं ॥

हितकारिणी (पत्रिका जबलपुर ।

प्रिय पण्डित विनाकराव जी,

आप की पुस्तक 'अयोध्या रत्नभण्डार' हमारी हिन्दी शालाओं के पाठक और विद्यार्थियों के लिये बहुत उपयोगी मार्गदर्शिका है । क्योंकि उस में नीति मार्ग के विचारों के उदाहरण भरे हुए हैं जिन के द्वारा चाल चलन के सुधराव में सच्ची सहायता हो सक्ती है ॥

(सही) हनुमानप्रसाद अ० सर्किल इन्स्पेक्टर शिक्षा खाता जबलपूर

अङ्गरेज़ी पत्र का अनुवाद--

मैं समझता हूं कि यह पुस्तक नीति उपदेशों से भारी हुई है जो बालकों के लिये बहुत उपयोगी है । पण्डित विनायक राव हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं और इस पुस्तक को रचकर उन्हों ने जवान मनुष्यों और बालकों के हृदय के सुधारने के विचार से बड़ा भारी उपकार किया है ॥

(सही) रायबहादुर सदाशिव जयराम एम. ए. संस्कृत प्रोफ़ेसर, गवर्नमेंट कलेज-जबलपूर

(४) व्याख्याविधि – इस में बहुतेरी नवीन उपयोगी और उत्तम २ बातों का समावेश किया गया है. यथा-परिभाषा सूचना, विस्तारपूर्वक वाक्य पृथकरण और व्याख्या तथा वाक्य पृथक्करण के बहुत से प्रश्न तथा टीचर्स सार्टीफिकेट हाई स्कूल स्कालर्शिप और एण्टेन्स परीक्षा के व्याकरण सम्बन्धी प्रश्न और बहुत सी उपयोगी सूचनाएं हैं, दाम वही अढ़ाई आना ॥

(५) परीक्षा पास--नार्मल स्कूल में भरती होने या परीक्षा पास की आस वाले 'परीक्षा' पास से आठ ही आने में सोलह आने पास होने का विश्वास रक्खें ॥

(६) जटल काफ़िया हँसी दिल्लगी के साथ ही साथ उपदेशों से भरी हुई सब को हँसाने हारी दोआने वाली यह पुस्तक निराली छटा छहरा रही है ॥

(७) किष्किन्धा काण्ड श्री विनायकी टीका सहित न्यौछावर छः आना कपड़े की जिल्द ॥)

(८) सुन्दरकांड श्री विनायकी टीका सहित भेट ॥) आना कपड़े की जिल्द ॥=)

(९) बाल कांड की श्री विनायकी टीका छप रही है और र (१०) उत्तर कांड की टीका तैयार हो रही है

विनायक राव पेंशनर—लार्डगंज जबलपुर

शुद्धि पत्र ।

सूचना—इस काण्ड का पाठ लोग बहुधा किया करते हैं इसहेतु इस की मूल कविता तो सब शुद्ध ही है, टिप्पणी की कविता भी प्रायः शुद्ध कर दी गई है, अर्थ आदि के शब्दों का शुद्धि पत्र यह है :—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	७	लंगा	लूणा	८७	१२	(तामस ूपी	(तामसरूपी)
८	७	दून	दूना	८७	२५	सुमिरयों	सुमिरयो
११	१९	हाता	होता	८८	२३	लंके का	लंका के
१२	२३	।जस	जिस	८८	२४	मांत्रयों	मंत्रियों
१२	२४	माना	मानो	८९	१५	हर	हरि
१३	२९	का	की	९६	२०	बे	वे
२४	२८	ह	है	९७	३१	कदब	कदम्ब
२९	२	रामन्चद्र	रामचन्द्र	९८	१८	श्लाक	श्लोक
४४	२१	विनु	बिन	१०५	२३	द्रमकुलप	द्रुमकुल्य
४७	५	जावेगा	जावेगा	१०९	१२	मुझ	मुझे
४८	२१	करि गर्जजउ	कर गर्जयउ	११०	१३	गिरैं	गिरैं
६८	४	भावमी	भावती	११६	२३	नारा	नारी
६८	९	।हतापदेश	हितोपदेश	११७	१८	जाऊ	जोऊ
७२	१३	दोजिये	दीजिये	११७	२४	विपात	विपत्ति
७५	१८	टीका को	टीका में	११७	२९	ऋषि नारा	ऋषि नारी
७६	८	दृडकुबन	दंडकवन	११९	१	क्राध	क्रोध
८०	२०	अचरण	आचरण	११९	३	ग्पु	रिपु
८२	३०	से दुजन	से दुर्जन	११९	२१	।क	कि
८२	३१	गया ह	गया है	१२०	१५	चूड़ामणिल	चूड़ामणि ले
८२	३२	डालता ह	डालता है	१२१	८	सुगध	सुगंध
८३	२	रामचन्द्र जी	हे रामचन्द्र जी	१२२	२१	।दखाया	दिखाया
८५	१९	हम ही का	हम ही को	१२२	२१	किसा	किसी
८५	२१	हाता है	होता है	१२४	७	विपत्ति का	विपत्ति की
८५	२१	ह अर्जुन	हे अर्जुन !	१२५	२४	इस में ता	इस में तो
८६	१३	प्राणी	प्राणी	१२६	२	धर्म का	धर्म के

करहिं सदा रघुनायक छोह।

---:o:---

श्रीरामचन्द्र जी की कृपा से सुन्दर काण्ड छप कर तैयार होगया है, क़ाग़ज़ मोटा और चिकना लगाया गया है इस की भेट ॥), कपड़े की पुट्ठेदार जिल्द ॥=)

पण्डितों का विश्वासपूर्वक कथन है कि इस कांड का प्रतिदिन पाठ करने से मनुष्य निरोगी रह कर बहुधा संकटों से बचा रहता है। प्रायः अनिष्ट निवारणार्थ लोग स्वतः किम्वा पंडितों द्वारा इस कांड का पाठ करवा कर सफल मनोरथ हुआ करते हैं। इस कांड की टीका भी प्रायः उसी ढँग से तैयार की गई है जिस ढँग से तीन कांडों की श्री विनायकी टीकाएँ तैयार की गई हैं, परन्तु यह टीका विशेष विचार से रची गई है, क्योंकि इस कांड का पाठ बहुधा लोग किया करते हैं। टीका के अन्त में 'मूलमंत्र' जाप करने के विवरण समेत नये ढँग से समझा कर छापे हैं, तथा प्रसिद्ध कहावतें भी जिन की संख्या इस छोटे कांड में अधिक है, प्रायः सिद्धि देने वाली हैं। निदान सीता सती जी का वर्णन समेत पढ़ कर विद्वज्जन क्षीरनीर के न्याय से यदि अपनी प्रसन्नता प्रकट करेंगे तो टीकाकार अपने को कृतार्थ समझेगा।

श्री विनायकी टीका सहित रामायण सादी जिल्द वाली अयोध्या कांड १।), आरण्यकांड ॥), किष्किन्धा कांड ।=) और सुन्दर कांड ॥), एकत्र २॥=) के पल्टे चारों कांडों को एक साथ लेने वाले केवल २॥=) ही में चारों कांड सटीक पावेंगे। इसी प्रकार कपड़े की पुट्ठेदार जिल्द वाली ऊपर की पुस्तकें क्रमानुसार १।≡), ॥=), ॥), और ॥=) एकत्र ३≡) के पल्टे केवल २॥=) ही में मिल सकेंगी। डाक महसूल ख़रीद दार के ज़िम्में रहेगा ॥

बालकांड की श्री विनायकी टीका छप रही है। उत्तर कांड की टीका तैयार हुआ चाहती है और लंका कांड की टीका लिखी जा रही है। अयोध्या रत्न भण्डार =)॥, व्याख्या विधि =)॥ जटल क़ाफ़िया प्रथम भाग =) वाली तो बिक्री के लिये छप कर तैयार ही है परन्तु जटल क़ाफ़िया दूसरा भाग तैयार हो रहा है।

सूचना — सुन्दर काण्ड के महात्म्य का विचार कर उसके प्रसार के लिये टीकाकार के पास यह कांड ३१ दिसम्बर सन् १३ तक ब्राह्मणों तथा विद्यार्थियों को ।=) में मिलेगा परन्तु बाहर वालों को दो आने डाक ख़र्च के अधिक लगेंगे।

किताबों की फ़ेहरिस्त प्रशंसा पत्र सहित सुन्दरकांड की पुरौनी के पश्चात् छपी है।

लार्डगंज — जबलपुर
जौलाई सन् १९१३

विनायकराव — पेंशनर